भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी-लेनिनवादी) की केन्द्रीय कमेटी का मुखपत्र

प्रतिरोध का स्वर

नवम्बर 2021

वर्ष 35
संख्या 11

मूल्य 2 रुपये

विशाखा स्टील के निजीकरण के खिलाफ विशाल मार्च व जन सभा

कोरोना महामारी के दौरान नरेंद्र मोदी सरकार ने राष्ट्रीय इस्पात निगम लिमिटेड के विशाखा स्टील प्लांट के निजीकरण का फैसला कर उसे पूरी तरह से तबाह कर दिया है। इससे हजारों लोगों का जहां रोजगार समाप्त हो गया है, तो वहीं दूसरी ओर दशकों पूर्व संयंत्र के लिए अधिग्रहित की गई जमीन के मालिकों और किसानों को एवज में नौकरी देने और आवास के लिए भूमि आबंटित करने का मामला अटक गया है। केंद्र सरकार के निजीकरण के इस फैसले के खिलाफ बीते कई महीनों से जोरदार आंदोलन चल रहा है। मोदी सरकार के निजीकरण के फैसले के खिलाफ 31 अक्टूबर 2021 को आंध्र प्रदेश में विशाखापत्तनम में एक विशाल मार्च निकाल कर विरोध प्रदर्शन किया गया और जनसभा की गई।

रणनीतिक बिक्री (मोदी सरकार में सहज और सरल प्रक्रिया) के नाम पर किए गए इस निजीकरण से प्लांट से जुड़े लोगों की रोजी–रोटी पर गंभीर संकट पैदा हो गया है। साथ ही जनता के पैसे से बनी बेहतर कंपनियों में से एक – विशाखा स्टील प्लांट– जिसके लिए अधिग्रहित की गई हजारों एकड़ जमीनें भी थीं उसे बेच दिया गया है। 33000 एकड़ के कुल क्षेत्रफल में 23000 एकड़ कृषि भूमि भी है जो 50 वर्ष पूर्व 64 गांवों के किसानों से 12000 रुपए प्रति एकड़ की दर से अधिग्रहित की गई थी। लोगों की सहमति की परवाह किए बिना अर्थात ''आंध्र हक्कू'' की स्थापना के बिना निजीकरण का फैसला किया गया है। 5 दशक पूर्व 107 वर्ग गज जमीन और एक कीमती ''आर'' कार्ड के बदले अधिग्रहित की गई जमीन का वायदा अभी तक पूरा नहीं हुआ है जबकि उसके बदले लोगों को पुश्तैनी घर और जमीनें छोड़नी पड़ी थीं। अधिग्रहण के समय किए गए वायदे के अनुसार सब को प्लांट में स्थाई रोजगार मिलना था। 16000 कार्ड धारकों में से 8500 परिवारों को अभी तक "आर" कार्ड के बदले नौकरी नहीं मिली है, जबकि उनकी दूसरी और यहां तक की तीसरी पीढ़ी भी उस कार्ड के भरोसे नौकरी मिलने की प्रतीक्षा करती रही है, जो उन परिवारों का अधिकार है।

विशाखापत्तनम सहित पूरे आंध्र प्रदेश में विशाखा प्लांट की बिक्री के खिलाफ विरोध शुरू हो गया है जो दिन पर दिन तेज होता जा रहा है। 1960 के दशक में एक बड़े आंदोलन के परिणामस्वरूप आंध्र प्रदेश में संयंत्र का निर्माण किया गया था। अब निजीकरण के खिलाफ प्लांट के अंदर यूनियनों ने मुख्य गेट के एक तरफ अनिश्चितकालीन धरना शुरू कर दिया है, तो दूसरी तरफ प्लांट की स्थापना के समय जमीन देने वाले विस्थापित भी धरना दे रहे हैं। 31 अक्टूबर 2021 को ये धरना 261 दिन यानी 6 महीने से अधिक का हो चुका था। इस बीच गंगावरम बंदरगाह (इसे निजी सार्वजनिक भागीदारी पीपीपी के रूप में चलाने के लिए बनाया गया था) जो संयंत्र से जुड़ा हुआ है और उसकी भूमि पर स्थित है, को आंध्र प्रदेश सरकार ने अडानी को सौंप दिया है।

31 अक्टूबर 2021 को इफ्टू, पीओडब्ल्यू, पीडीएसयू, एमएनएसएस, एआईकेएमएस और अरूणोदय ने संयुक्त रूप से विशाखापत्तनम में विशाखा स्टील के निजीकरण के खिलाफ एक विशाल विरोध मार्च और जन सभा का आयोजन किया। शाम 4:00 बजे गुजवाका जंक्शन से लाल झंडों के साथ रैली शुरू हुई, जो 2.5 किलोमीटर चलकर सभा स्थल तक गई। मार्च के साथ लगातार अरुणोदय कलाकारों की टीम रास्ते भर धप्पू ताल पर नृत्य करती चलती रही। प्रमुख बैनर के पीछे जन संगठनों के नेताओं के साथ अतिथि एनएपीएम नेता सुश्री मेधा पाटकर और इफ्टू की राष्ट्रीय समिति की अध्यक्ष कामरेड अर्पणा भी चल रहीं थीं।

जन सभा शाम 5:00 बजे अरुणोदय टीम के गीतों और नृत्यों के साथ शुरू हुई। इफ्टू की राज्य कमेटी की ओर से का. जे वेंकटेश्वरलू ने वक्ताओं को मंच पर आमंत्रित किया। उन्होंने इफ्टू के

(शेष पृष्ठ 5 पर)

त्रिपुरा : फासीवादी शासकों द्वारा यू.ए.पी.ए. लगाने का विरोध करो

त्रिपुरा में आर.एस.एस. के संगठनों द्वारा अल्पसंख्यकों के खिलाफ की गई हिंसा तथा इस पर रिपोर्ट देने वाले कार्यकर्त्ताओं के खिलाफ त्रिपुरा पुलिस द्वारा यू.ए.पी.ए. के तहत केस दर्ज करना शासक आर.एस.एस.–भाजपा के फासीवादी हमलों का हिस्सा हैं। एक ओर अल्पसंख्यकों के घरों तथा धार्मिक स्थलों पर हमले किये गये और दूसरी ओर उन हमलों की रिपोर्ट देने वालों पर यू.ए.पी.ए. लगाया गया। संघ संगठनों द्वारा ये हमले बांग्लादेश की घटनाओं के कथित विरोध में किये गये।

बांग्लादेश में ये हमले एक दुर्गा पूजा पंडाल में धार्मिक ग्रंथ कुरान के कथित अपमान के नाम पर किये गये थे। वहां की पुलिस ने उस अवांछनीय फोटो को जारी करने के आरोप में एक इकबाल हुसैन को गिरफ्तार किया है। इससे बांग्लादेश के चरमपंथी संगठनों द्वारा अपने राजनीतिक हितों के लिए अल्पसंख्यकों को निशाना बनाने की साजिश का खुलासा हुआ। स्पष्ट हुआ कि बांग्लादेश में यह हमले एक सुनियोजित साजिश का हिस्सा थे। बांग्लादेश में हिन्दू अल्पसंख्यकों पर हुए हमलों की व्यापक निंदा हुई है। इन हमलों के खिलाफ बांग्लादेश में भी कई बड़े विशाल प्रदर्शन हुए। ऐसे प्रदर्शन भारत में भी कई स्थानों पर हुए।

परंतु आर.एस.एस. तथा उसके सहयोगी संगठनों ने इन हमलों का इस्तेमाल अपनी साम्प्रदायिक फासीवादी मुहिम के लिए किया। इसके लिए त्रिपुरा को चुना। ज्ञात हो कि कुछ समय पहले त्रिपुरा में संघ–भाजपा द्वारा वाम संगठनों के कार्यलयों पर हमले किये गये थे। ये हमले त्रिपुरा में सत्तारूढ़ आर.एस.एस. –भाजपा ने पुलिस के सहयोग से किये थे। दरअसल त्रिपुरा में सत्ता में रहने के लिए आर.एस.एस.–भाजपा साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण तेज कर रहे हैं। हाल में हुए आदिवासी क्षेत्रों की स्वायत्त परिक्षद के चुनावों में इनकी बुरी तरह से हार हुई थी। त्रिपुरा विधानसभा की एक तिहाई सीटें इन क्षेत्रों में हैं। इसके बाद संघ–भाजपा की साजिशें और तेज हो गई हैं। हांलाकि इस साम्प्रदायिक मुहिम का तात्कालिक फोकस त्रिपुरा है पर यह आर.एस.एस. –भाजपा के अखिल भारतीय साम्प्रदायिक अभियान का हिस्सा है। आगामी विधानसभा के चुनावों, विशेषकर सबसे बड़े प्रांत उत्तर प्रदेश में आसन्न चुनावों, के मद्देनजर यह अभियान और तेज कर दिया गया है।

आर.एस.एस.–भाजपा के फासीवादी शासन का आधार जहां एक ओर उसके द्वारा किये जाने वाले साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण में है वहीं वे पूरी राज्य मशीनरी का फासीवादीकरण कर रहे हैं। राज्य मशीनरी का सैन्यकरण उसका भाग है। हाल में अंतर्राष्ट्रीय सीमा से सटे प्रांतों में बी.एस.एफ. के कार्य का दायरा बढ़ाना भी उसका एक भाग है।

आर.एस.एस.–भाजपा ने पहले से ही मौजूद दमनकारी कानूनों को और पैना बनाया है तथा उनका बड़े पैमाने पर जनता तथा उसके संघर्षों के खिलाफ इस्तेमाल भी किया है। आर.एस.एस. –भाजपा शासन में जनवादी अधिकार संगठनों के कार्यकर्त्ताओं को भी बड़े पैमाने पर निशाना बनाया गया है। इसमें यू.ए.पी.ए. तथा आई.पी.सी. की राजद्रोह की धारा का बड़े पैमाने पर दुर्पयोग शामिल है। इन दमनकारी कानूनी प्राविधानों की भाषा पहले से ही काफी व्यापक है तथा इसके घोषित उद्देश्यों के साथ–साथ सामान्य विरोध भी इसके लपेटे में आ जाते हैं। राजद्रोह की यह धारा अंग्रेज औपनिवेशिक शासकों ने जानबूझकर व्यापक रखी थी ताकि उसकी चपेट में हर किस्म के सरकार के विरोध को लाया जा सके। औपनिवेशिक शासन के बाद सत्ता में आये देश के शासकों ने न केवल इन दमनकारी कानूनों को कायम रखा बल्कि दमन के इन औजारों को और मजबूत किया। आज आर.एस.एस.–भाजपा सरकार इन दमनकारी कानूनों को पैना करके इनका इस्तेमाल अपने फासीवादी हमलों के लिए कर रही हैं।

उच्च न्यायपालिका ने भी इन दमनकारी कानूनों का निरस्त करने से परहेज किया जबकि ये संविधान में दिये गये जनवादी अधिकारों का खुल्लमखुल्ला हनन करते हैं। आम नागरिक के लिए उच्च न्यायपालिका तक पहुंचना आसान नहीं है। साथ ही इस दौरान निर्दोष लोगों को लंबा समय सलाखों के पीछे गुजारना पड़ता है। इससे शासकों को विशेष फर्क नहीं पड़ता क्योंकि जनता तथा कार्यकर्त्ताओं को आतंकित करने के मकसद में वे कामयाब हो जाते हैं। इसलिए इन दमनकारी कानूनों को निरस्त करके ही जनता के जनवादी अधिकारों की कुछ हद तक हिफाजत हो सकती है। कानूनी महीनता देश की आम जनता के हित में नहीं है।

त्रिपुरा में हुई व्यापक हिंसा की रिपोर्ट करने वाले पत्रकारों तथा वकीलों को न केवल सरकारी दमन का निशाना बनाया जा रहा है बल्कि उनके खिलाफ यू.ए.पी.ए. के तहत केस भी बनाये गये हैं। उच्चतम न्यायालय के दो वकीलों को भी इसका नोटिस दिया गया है तथा दो महिला पत्रकारों को गिरफ्तार किया गया है। दरअसल इस दमनचक्र का मकसद आर.एस.एस.–भाजपा की साम्प्रदायिक फासीवादी मुहिम के खिलाफ उठने वाली आवाजों को दबाना है। इस दमनचक्र का व्यापक विरोध बेहद जरूरी है।

म्यांमार : सैनिक शासन के विरोध में बदलाव के संकेत

नवंबर 2020 के चुनाव परिणामों को सेना द्वारा खारिज कर 1 फरवरी 2021 को सत्ता पर कब्जा कर लेने के बाद से पड़ोसी देश म्यांमार (पूर्व में बर्मा) में बड़े पैमाने पर जन प्रतिरोध बढ़ा है। निश्चित तौर पर लाखों लाख म्यांमार की जनता नागरिकों को सत्ता सौंपने की मांग को लेकर बड़े–बड़े प्रदर्शन कर रही है और सेना भी गिरफ्तारी से लेकर प्रदर्शनकारियों पर गोलीबारी कर रही है। म्यांमार में यह प्रतिरोध सेना द्वारा जबरन राज्य पर पूर्ण नियंत्रण के खिलाफ ही नहीं बल्कि यह जन प्रतिरोध संविधान में अंतर्निहित अधिकारों को प्राप्त करने की मांगों से आगे बढ़ कर क्रांतिकारी सवालों को उठा रहा है। इस प्रतिरोध में सुरक्षा बलों के लोग भी शामिल है जो म्यांमार का लोकतंत्रीकरण चाहते हैं। नागरिक शासन की बहाली की मांग, राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों को उनके अधिकारों और स्वायत्तता की मांग के साथ ही युवाओं और श्रमिकों के सवाल भी उससे जुड़ते जा रहे हैं।

पॉलीटिकल प्रिजनर्स की सहायता के लिए एसोसिएशन के अनुसार 1 फरवरी 2021 को पूर्ण सत्ता हथियाने और तत्कालीन सत्तारूढ़ नेशनल लीग आफ डेमोक्रेसी की अध्यक्ष और सबसे महत्वपूर्ण नेता आंग सान सू की सहित अन्य नेताओं की गिरफ्तारी के बाद से म्यांमार में सेना द्वारा 900 से अधिक प्रदर्शनकारियों को मार दिया गया है। 1 फरवरी को संसद के नवनिर्वाचित सदस्यों की पहली बैठक होने से ठीक पहले सैनिक कमांडर आंग हलिंग ने सेना की सहायता से सत्ता जबरन छीन ली। सेना ने आरोप लगाया है वह सत्ता पर इसलिए कब्जा कर रही है क्योंकि नवंबर 2020 के संसदीय चुनावों में एनएलडी द्वारा गड़बड़ी की गई और इसके खिलाफ शिकायतों पर कोई कार्यवाही नहीं की गई। उस चुनाव में एनएलडी ने 83 प्रतिशत वोट हासिल किए थे तथा संसद में दो तिहाई से अधिक सीटें हासिल कीं। चुनावी गड़बड़ी के नाम पर सेना ने सत्ता पर कब्जा किया जबकि वह चुनावों में गड़बड़ी का कोई सुबूत पेश नहीं कर सकी और सू ची व अन्य नेताओं के खिलाफ लगाए गए कथित मामले चुनावी भ्रष्टाचार से संबंधित नहीं हैं। दरअसल नवंबर के चुनाव में सेना ने खुलकर विपक्षी पार्टी का समर्थन किया था लेकिन वह पार्टी बुरी तरह पराजित हुई। सेना ने शुरू में 1 साल के भीतर चुनाव कराने का वायदा किया था और फिर बाद में इस अवधि को बढ़ाकर 2 वर्ष कर दिया।

अब यह सैन्य तख्तापलट कड़े प्रतिरोध का सामना कर रहा है और देश भर में एक मजबूत जन आंदोलन विकसित हो रहा है। सेना द्वारा कर्फ्यू घोषित किए जाने और गोलीबारी को धता बताते हुए हजारों प्रदर्शनकारी विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं बल्कि लोकतांत्रिक प्रदर्शनों में भी सेना के दमन से निपटने के लिए उन्होंने गोरिला ढंग अपनाया है जिसमें एकदम अचानक से सैकड़ों लोग जुट जाते हैं और प्रदर्शन कर गायब जाते हैं या छुप जाते हैं। सेना इन प्रदर्शनों का अमानवीय व हिंसक ढंग से दमन कर रही है और उसने 5000 से अधिक प्रदर्शनकारियों को गिरफ्तार किया है। बड़ी संख्या में प्रदर्शनकारी लापता है और उनका घरों और कार्य स्थलों से अपहरण किया जा रहा है। इसके अलावा सेना ने दूरदराज के क्षेत्रों में आवश्यक वस्तुओं का परिवहन भी बंद कर दिया है जिससे उन क्षेत्रों में आवश्यक दैनिक वस्तुओं की कमी जैसा गंभीर मानवीय संकट पैदा हो गया है। सेना ने हजारों अपराधियों को प्रदर्शनकारियों के खिलाफ इस्तेमाल करने के लिए जेलों से रिहा किया है जो प्रदर्शनकारियों पर हमले के साथ ही उनकी मुखबरी भी कर रहे हैं। सेना कुछ क्षेत्रों में लोगों पर हवाई हमले भी कर रही है। लोगों की आवाजाही रोकने, इंटरनेट बंद करने के अलावा सभी तरह के प्रतिबंधात्मक उपाय उसने अपनाए हैं फिर भी जनता प्रतिरोध के नए–नए रूप अपना रही है।

म्यांमार में सैन्य तख्तापलट नवनिर्वाचित संसद की पहली बैठक के दिन हुआ क्योंकि सेना को डर था कि 2 तिहाई से अधिक बहुमत के साथ एनएलडी 2008 के संविधान में संशोधन कर सकती है, जिसे सेना ने अपने शासन और व्यावसायिक हितों को बनाए रखने के लिए तैयार किया था। म्यांमार की चार लाख मजबूत सेना दक्षिण पूर्व एशिया में दूसरी सबसे बड़ी सेना है। म्यांमार इकोनामिक होल्डिंग लिमिटेड सेना के नियंत्रण में एक ऐसा समूह है जिसके तंबाकू, बीयर, दूरसंचार, खनन और रत्नों के व्यापार में व्यापक व्यापारिक हित हैं। 2008 का संविधान सेना को व्यापक अधिकार देता है। सेना संसद के 25 प्रतिशत सदस्यों को नियुक्त करती है। यह राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रभारी तीन सबसे शक्तिशाली सरकारी मंत्रालयों को नियंत्रित करती है। देश के सबसे धनी लोगों में सेना के जनरल हैं जो बड़े व्यवसायिक व्यापारिक उपक्रमों का संचालन करते हैं। वास्तव में 2008 के संविधान को स्वीकार करते हुए एनएलडी और सान सू ची के माध्यम से शुरू हुआ लोकतंत्र बुर्जुआ लोकतांत्रिक मानकों के अनुसार भी अत्यंत कमजोर और छोटा कर दिया गया है। सत्ता के संचालन और नियंत्रण के लिए सेना ने सैन्य तानाशाही और लोकतंत्र का मिश्रण तैयार किया है।

सैन्य शासन के खिलाफ म्यांमार में जारी है जनप्रतिरोध

1962 में सत्ता पर कब्जा करने के बाद से सेना ने म्यांमार पर 5 दशकों तक शासन किया और इसने लगभग सभी औद्योगिक व व्यावसायिक गतिविधियों पर व्यापक नियंत्रण कर लिया और कृषि के बाहर रोजगार का वह मुख्य नियंत्रक रही है। यहां तक कि विदेशी निवेश भी सेना के माध्यम से ही किया जाता रहा है। विदेशी फर्मों का सेना नियंत्रित उद्योगों और व्यवसाय में निवेश हुआ है।

म्यांमार काफी हद तक एक ग्रामीण देश है जहां कामकाजी उम्र की आबादी 71 प्रतिशत है और शहरी क्षेत्रों में यह 29 प्रतिशत है। 2017 के अनुमानों के अनुसार सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का हिस्सा 24.1 प्रतिशत, उद्योग का 35.6 और सेवाओं का 40.3 प्रतिशत हिस्सा था। कृषि संबंधी कार्यों में 54.2 प्रतिशत रोजगार रहा है। इसके बाद थोक और खुदरा व्यापार में 13.9 प्रतिशत है। विदेशी निवेश बढ़ने के बाद इसकी जीडीपी में वृद्धि हुई है जिसमें सबसे बड़ा निवेशक चीन और दूसरे नंबर पर सिंगापुर रहा है। इसकी जीडीपी विकास दर 2018 में 6.8 प्रतिशत थी, 2019 में 6.3 और 2020 में 1.5 प्रतिशत थी और 2021 में इसके 6 प्रतिशत रहने का अनुमान है। यह काफी हद तक एक पिछड़ा और दक्षिण पूर्व एशिया का सबसे गरीब देश है हालांकि यह प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है। एक महत्वपूर्ण पहलू सेना के अधिकारियों द्वारा अधिकांश व्यवसायों पर नियंत्रण है। इनमें बड़े जमींदार भी शामिल हैं। यह सैन्य शासन की पृष्ठभूमि के साथ–साथ लोकतांत्रिक परिवर्तन की कठिनाइयों को दर्शाता है।

म्यांमार में एक महत्वपूर्ण सवाल अल्पसंख्यकों का है। बामर राष्ट्रीयता जिससे राज्य की संरचना तैयार की गई है कुल जनसंख्या का लगभग 65 प्रतिशत है। बाकी करेन, काचीन, शान, करेनी, चिन, मांग, अराकान और रोहिंग्या जैसी राष्ट्रीय अल्पसंख्यक समूह हैं। इनके अलावा अन्य छोटे समूह भी हैं। अल्पसंख्यक आबादी म्यांमार के उत्तर पूर्व, पश्चिम और दक्षिण पश्चिम के विशाल क्षेत्रों में निवास करती हैं जो क्षेत्रवार म्यांमार का बड़ा हिस्सा है। म्यांमार के शासक वर्ग और सशस्त्र बल दोनों ही बामर बहुसंख्यक आबादी से आते हैं। अल्पसंख्यकों के लोकतांत्रिक अधिकारों का वहां कोई सम्मान नहीं रहा है। म्यांमार में सशस्त्र बलों और अल्पसंख्यक राष्ट्रीय समूहों के बीच लंबे समय से सशस्त्र संघर्ष चल रहे हैं। बर्मा में ऐसे संघर्षों का एक लंबा इतिहास है। ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां अल्पसंख्यक राष्ट्रीय समूहों अधिक हैं और वे अलग–अलग सशस्त्र बलों का गठन किए हुए हैं। म्यांमार सेना खुद को देश की एकता और अखंडता के एकमात्र रक्षक के रूप में पेश करती है। अल्पसंख्यक समूह सेना के खिलाफ लड़ने वाले मुख्य तत्वों में से एक हैं। सू ची के पिता जनरल आंग सान के समय से सेना राष्ट्रीय अल्पसंख्यकों का दमन करती रही है, जिनकी अल्पसंख्यक क्षेत्र में प्रतिमा की स्थापना के बाद विरोध प्रदर्शन शुरू हुए थे जिन्हें सू ची की एनएलडी पार्टी के शासन में सेना ने दबा दिया था।

बामर बहुसंख्यकों का धर्म बौद्ध है और बौद्ध भिक्षु भी सेना के शासन को लेकर विभाजित हैं। बौद्ध भिक्षुओं ने सैन्य शासन के तहत भ्रष्टाचार और दमन के खिलाफ कई विरोध प्रदर्शन किए हैं हालांकि बौद्ध भिक्षुओं में एक तबका अल्पसंख्यकों के खिलाफ बहुत आक्रामक रूख का प्रचार करता है और उनके दमन की मांग करता है। वह अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों के खिलाफ सक्रिय रूप से आक्रामक रहे हैं। 'टाइम मैगजीन' ने असिन विराथु को बौद्ध आतंक का चेहरा कह कर 'कवर स्टोरी' किया था। रोहिंग्या संकट के दौरान उन्होंने रोहिंग्या मुसलमानों के खिलाफ हिंसा की वकालत की। भिक्षुओं का यह समूह सेना का करीबी है और इसके भारत में आरएसएस और श्रीलंका में बीबीएस जैसे अन्य देशों में बहुसंख्यक संगठनों के साथ संबंध हैं।

म्यांमार के लोग लंबे समय से सैन्य शासन के खिलाफ लड़ रहे हैं और उन्होंने 1962 में और 1980 के दशक के अंत में सैन्य शासन के खिलाफ देशव्यापी आंदोलन देखे हैं। उसी आंदोलन के कारण 1990 में चुनाव हुए लेकिन सेना ने सान सू ची के एनएलडी द्वारा जीते गए चुनावों के परिणामों का सम्मान करने से इंकार कर दिया। एनएलडी को दबा दिया गया और सू ची को हिरासत में रखा गया। वह म्यांमार में सैन्य शासन के खिलाफ अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करके उभरी और उन्हें नोबेल पुरस्कार भी मिला। 2007 में बौद्ध भिक्षुओं के बड़े विरोध 'भगवा क्रांति' ने सेना को झकझोर दिया था व अलग–थलग कर दिया था। सेना ने 2008 में एक नया संविधान बनाया जो सेना द्वारा नियंत्रित कथित लोकतांत्रिक शासन पद्धति थी।

सू ची और एनएलडी द्वारा समझौता

अंग सान सू ची एनएलडी की स्थापना के बाद से ही मुख्य नेता रही हैं। संभवत अपने लंबे कारावास से तंग आकर उन्होंने 2008 के संविधान को मान्यता दी थी और उस ढांचे के तहत काम करने के लिए सहमत इस कथित उम्मीद से हुई थी कि सेना के कुछ जनरलों को अपनी तरफ मिला लिया जाएगा। चुनावी जीत से उन्हें सेना के शीर्ष अधिकारियों को प्रभावित करने में मदद मिलेगी। उन्होंने आशा की थी कि विदेशी निवेश, विशेष रूप से पश्चिमी देशों से निवेश, एक ऐसा कारण होगा जो सेना को सत्ता में कब्जाने से हतोत्साहित करेगा। उम्मीद के मुताबिक उन्होंने 2015 और फिर नवंबर 2020 में चुनाव जीता। 2020 में उनकी जीत ने शीर्ष सैन्य अधिकारियों को विरोध के लिए प्रेरित किया क्योंकि राज्य के मामलों में और उनके विशाल व्यापारिक साम्राज्य के लिए खतरा पैदा हो गया।

सू ची ने यह समझौता उस समय किया जब सेना कमजोर स्थिति में थी और बामर बहुमत सहित लोगों के बीच बढ़ता गुस्सा उसके साथ था। सू ची ने यह समझौता इसलिए भी किया क्योंकि वह नहीं चाहती थी कि यह संघर्ष एक क्रांतिकारी आयाम ग्रहण करे और अभिजात वर्ग के शासन के लिए खतरा बने। उन्होंने खुद भी गैर बामर जातीय समुदायों के खिलाफ बामरों की कट्टरवादी राष्ट्रीय भावनाओं को भड़काया। म्यांमार के रखाइन प्रांत में रोहिंग्याओं के दमन के समर्थन में भावनाओं और पूर्वाग्रह को काफी हद तक उनका समर्थन था। रोहिंग्या मुसलमानों को सेना ने जनसंहार किया, उनके घरों को जलाया और महिलाओं के साथ बलात्कार किया जिससे लगभग 10 लाख रोहिंग्या पलायन को मजबूर हुए जिनमें बड़ी संख्या ने बांग्लादेश में जाकर शरण ली। सू ची ने रोहिंग्याओं के खिलाफ सैन्य अभियान का समर्थन किया। 2016 में उन्होंने इस मुद्दे पर पूर्व अमेरिकी महासचिव कोफी अन्नान की अध्यक्षता में एक अंतरराष्ट्रीय सलाहकार आयोग का गठन किया लेकिन सू ची ने आयोग की सिफारिशों को ठंडे बस्ते में डाल दिया।

सू ची के सेना को समर्थन देने ने न केवल पश्चिमी देशों में लोकतंत्र के प्रतीक के रूप में उनकी छवि खराब की बल्कि इससे सेना को बहुत मदद मिली। सेना ने म्यांमार की एकता और अखंडता के एकमात्र संरक्षक के रूप में खुद को आगे खड़ा कर लिया। यह उन शीर्ष सैन्य अधिकारियों के लिए बहुत मददगार हुआ जिनकी छवि भ्रष्ट और दमनकारी थी। रोहिंग्याओं के खिलाफ अभियान ने भिक्षुओं के एक वर्ग सहित बामर कट्टरपंथी वर्गों को भी सेना के पक्ष में खड़ा कर दिया।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

लखीमपुर हत्याएं : 3 अक्टूबर, 2021

बर्बर हमला भाजपा–आरएसएस की करपोरेट सेवा और फासीवादी अपराधी चरित्र का एक और सबूत

लखीमपुर में अकारण, बर्बर हमले में भाजपा के स्थानीय सामंती गुंडा गिरोह ने चार किसानों और एक प्रेस रिपोर्टर को कुचल कर मार डाला। यह हमला आरएसएस–भाजपा के गुंडों द्वारा आयोजित किया गया था और इसमें केन्द्रीय नेतृत्व की सहमति थी, यह कई पहलुओं से स्पष्ट है जैसे स्थानीय सांसद और केंद्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा द्वारा धमकी दिया जाना, उनके बेटे द्वारा हमले का नेतृत्व करना, आरोपित होने के बावजूद अपने पद पर मिश्रा का बना रहना और इस मामले में आरएसएस व भाजपा के केंद्रीय नेतृत्व की चुप्पी, आदि।

अजय मिश्रा को हाल ही में 7 जुलाई को अमित शाह के मंत्रालय में, जिनका अपना आपराधिक इतिहास कोई रहस्य नहीं है, केंद्रीय गृह राज्य मंत्री बनाया गया था। 25 सितंबर को इस मंत्री, 'टेनी महाराज' जैसा कि वे अपने अनुयायियों के लिए जाने जाते हैं, ने चेतावनी दी थी, "अगर हम उधर जाते तो भागने के लिए रास्ता नहीं मिलता। अपने को सुधार लो, वरना हम सामना करके आप को सुधार देंगे, 2 मिनट के अंदर। मैं केवल मंत्री नहीं हूं, सांसद–विधायक नहीं हूं। सांसद बनने से पहले जो मेरे विषय में जानते हैं उनको यह भी मालूम होगा कि मैं किसी चुनौती से भागता नहीं हूं। जिस दिन मैंने उस चुनौती को स्वीकार करके काम शुरू कर दिया उस दिन लखीमपुर छोड़ना पड़ जाएगा, यह याद रखना"। 3 अक्टूबर को, जिस दिन उन्होंने आपराधिक इतिहास वाले एक और प्रमुख भाजपा व्यक्तित्व, यूपी के डिप्टी सीएम केशव मौर्य को अपने पैतृक गांव बनवीरपुर में कुश्ती 'दंगल' में आमंत्रित किया था, उन्हें प्रदर्शनकारियों को अंगूठा नीचा करते दिखाते हुए देखा गया था।

श्री टेनी का लंबा अपराधिक रिकॉर्ड है। वह 2005 में 24 वर्षीय प्रभात गुप्ता की हत्या के एक मामले में आरोपी हैं, जिसमें उन्हें निचली अदालतों से राहत मिली है और मामला उच्च न्यायालय में चुनौती के अधीन है। वह काफी संपत्ति वाले व्यक्ति हैं, एक स्थानीय बाहुबली हैं और नेपाल से 'सीमा पार व्यापार' हित रखते हैं। इस पृष्ठभूमि से मंत्री पद पर उनका आना, इस मंत्रीमण्डल के विस्तार में वह एकमात्र ब्राह्मण थे, दर्शाता है कि सत्तारूढ़ भाजपा कैसे राजनीतिक नेतृत्व को बढ़ावा दे रही है। दो पक्षों के बीच यूपी पर नियंत्रण के लिए संघर्ष में इस प्रकार के चेहरे मोदी–शाह की जोड़ी और ठाकुर मुख्यमंत्री की ओर से भूमिका निभा रहे हैं। श्री मिश्रा को यूपी में भाजपा के कई अन्य जाने–माने ब्राह्मण चेहरों से ऊपर चुना गया था।

3 अक्तूबर को मंत्री के बेटे आशीष मिश्रा ने 3 एसयूवी के एक काफिले को तेज गति से दौड़ाने का नेतृत्व किया और शांतिपूर्ण विरोध के बाद लौट रहे किसानों पर पीछे से वाहन चढ़ाकर लोगों को कुचलने की योजना, जिसकी धमकी दी गई थी, के अंतिम कार्य को पूरा किया। इस घटना में लोगों के बचने का कोई रास्ता नहीं था। यह जघन्य कार्य अचानक नहीं किया गया। यह बिना किसी उकसावे के था और कुछ सेकंड के अंतराल में पूरा हो गया था। यह घटना भारत के किसानों के निरंतर और बढ़ते हुए विरोध का सामना करने में असमर्थ होने के कारण भाजपा की हताशा के स्तर को उजागर करती है।

फासीवादी शासन को चुनौती : दमन की नई रणनीति

3 कानूनों के खिलाफ और एमएसपी पर खरीद के लिए इस किसान आंदोलन ने आरएसएस–बीजेपी की एनडीए सरकार के फासीवादी शासन के लिए एक जोरदार चुनौती पेश की है। इसने जनता को लामबंद किया है, उन्होंने पुलिस प्रशासनिक दबाव का – अपराधिक केस, बैरिकेड्स और सभी का सामना किया है, इसने बुराड़ी में स्थानांतरित करने की चाल में शामिल होने से इनकार कर दिया, इसने किसानों को कानूनी पचड़े में उलझाने के प्रयास को विफल कर दिया, इसने आंदोलन को, लाल किले पर धार्मिक झंडा फहराकर, एक अलगाववादी, खालिस्तानी आंदोलन के रूप में पेश करने के षडयंत्र पर काबू पा लिया और यह आंदोलन स्थिर बना रहा और यह बड़ी संख्या में जनता को लामबंद करता रहा। आरएसएस ने 28 जनवरी को उत्तर प्रदेश की गाजीपुर सीमा पर कमजोर दिख रही किसानों की ताकत पर हमला करने के लिए अपने गुंडों को भेजा था। लेकिन सड़क खाली करने से इन्कार करके फिर से किसान बहादुरी के साथ उठ खड़े हुए थे। किसानों के गुस्से के और बढ़ने के डर से पुलिस पीछे हट गई थी। आरएसएस की यह योजना, विरोध करने वाले किसानों पर शारीरिक रूप से हमला करने के लिए अपने बाहुबलियों का इस्तेमाल करने और फिर शांति और 'कानून और व्यवस्था को अपना काम करने' के नाम पर, राज्य के सुरक्षा बलों को सक्रिय करने का काम लखीमपुर में किया गया है। यह एक नई स्थिति है, नए केंद्र में है व कुछ नई चुनौतियां पेश करती है।

जहां लंबे समय तक मोदी शाह फासीवादी शासन ने 'लोक' को 'तंत्र' के निदेशों का पालन करने के लिए मजबूर किया था, वहीं अब किसानों के नेतृत्व वाले 'लोक' ने 'तंत्र' पर सवाल उठा दिये हैं। 'तंत्र' के लिए कुछ भी काम नहीं किया है क्योंकि किसान कानूनों को निरस्त कराने के लिए और फसल मूल्य की गारंटी की मांगों पर दृढ़ हैं। फिर भी, एक बार पुनः कारपोरेट संचालित मीडिया आंदोलन को हिंसक, गैर–सैद्धांतिक, अनैतिक, किसानों से कोई लेना–देना नहीं होने की बातें कहकर बदनाम करने की मुहिम पर है।

इस घटना ने संघर्ष के दृश्य को तराई क्षेत्र में स्थानांतरित कर दिया है, जो अभी भी पूरी तरह से तैयार नहीं है। यूपी के तराई क्षेत्र में सिख सहारनपुर, बिजनौर, मुरादाबाद, रामपुर, बरेली, पीलीभीत, लखीमपुर और बहराइच जिलों में हैं। हालाँकि, लखनऊ के नवाबों द्वारा ब्रिटिश शासन से पहले भी यूपी में सिख बसापतों को प्रोत्साहित किया गया था, लेकिन मुख्य प्रवाह विभाजन के बाद आया जब एक बड़ी आबादी आई, जिससे उनकी आबादी लगभग 1.5 गुना हो गई। जमीन केवल उन्हीं को आबंटित की गई थी, जिन्होंने पाकिस्तान में जमीन खो दी थी और प्रति लाभार्थी 12 एकड़ के मानक पर। जिन विस्थापितों के पास जमीन नहीं थी, उन्हें कोई जमीन आबंटित नहीं की गई। बाद में अप्रयुक्त पड़ी जमीन पर प्रवास में भूमि की कृषि क्षमता से बढ़ावा मिला। कुछ पिछड़ी जाति के सिखों जैसे रायसिखों का एक वर्ग जो श्रमिक के रूप में शामिल हुए, उन्हें भी जमीन नहीं दी गयी। उनमें से कुछ ने जमीन खरीदी। इसमें से अधिकांश जमीनें वनों के अधीन थीं और कृषि भूमि में परिवर्तित की गयीं। हालांकि इस क्षेत्र को कभी–कभी 'मिनी पंजाब' कहा जाता है, तराई बेल्ट जिलों में सिखों की आबादी काफी कम है। यह लखीमपुर में केवल 2.63 प्रतिशत है जो सभी जिलों में सबसे अधिक है।

इसमें नुकसान उठानें वालों में तराई के मूल निवासी, स्थानीय थारू और बोक्सा जनजातियां शामिल हैं।

कुल मिलाकर, सिखों के पास, आबादी में उनके हिस्से की तुलना में भूमि में एक बड़ा हिस्सा है। लखीमपुर में उनकी औसत भूमि 6.92 एकड़ है। दूसरी ओर, अन्य कई समुदाय, कुल भूमि के ज्यादा बड़े हिस्से को नियंत्रित करते हैं, हालांकि औसत व्यक्तिगत जोत 2.02 एकड़ है।

क्षेत्र की भूमि के मूल्य का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि 2019–20 में राज्य के कृषि, मत्स्य पालन और वानिकी क्षेत्र में 12,414.40 करोड़ रुपये मूल्य के साथ लखीमपुर खीरी का सबसे अधिक योगदान था।

जमीन की उच्च उत्पादकता और जीविका के लिए कृषि पर निर्भरता ने इस आंदोलन में यूपी और उत्तराखंड के तराई क्षेत्र के लोगों को आकर्षित किया। वे गाजीपुर में स्थायी धरना स्थापित करने और अन्य विरोध प्रदर्शनों में सबसे बड़ी लामबंद करने वालों में सबसे दृढ़ रहे हैं। यह महत्वपूर्ण है कि पंजाब में 60 फीसदी से अधिक धान और गेहूं की खरीद सरकार द्वारा की जाती है, पर यूपी और उत्तराखंड में यह कुल उपज का 10 प्रतिशत से भी कम है। क्षेत्र की अन्य व्यावसायिक फसल, गन्ना, की खेती देर से भुगतान और फसल के कम रेट की समस्याओं से ग्रसित है। इसलिए उत्तर प्रदेश और उत्तराखंड की भागीदारी के साथ, स्वामीनाथन फार्मूले के अनुसार एमएसपी पर सरकारी खरीद की कानूनी गारंटी की मांग सामने आई।

भाजपा ने क्षेत्र के सिखों के खिलाफ माहौल बनाने के लिए गलत तथ्यों का खूब प्रचार किया। उसने स्थानीय लोगों को सिखों के खिलाफ खड़ा करने और सांप्रदायिक विभाजन पैदा करने की कोशिश करके इस स्थिति का फायदा उठाने की कोशिश की। सबसे पहले उन्होंने प्रचार किया कि सिख बाहरी हैं, यह नहीं बताया कि नवीनतम बसने वाले भी कम से कम 3 पीढ़ी पुराने हैं। इसका कोई असर नही हुआ। दूसरा, उन्होंने प्रचार किया कि सिखों ने थारू और बोक्सा जनजातियों को विस्थापित कर दिया है। इसका भी कोई असर नहीं हुआ। दरअसल, जंगलों से बोक्सा और थारू का विस्थापन मुख्य रूप से इसलिए हुआ क्योंकि शासक वर्गों और सरकार ने उन्हें खेती में बसने में कभी मदद नहीं की। इन आदिवासियों के पास न तो तकनीकी जानकारी थी और न ही संसाधन, और सरकार ने उनकी मदद के लिए कुछ नहीं किया। दूसरी ओर, सिखों के पास अनुभव और संसाधन दोनों थे और जब सरकार ने स्वयं वन भूमि को कृषि भूमि में बदलने और गैर–आदिवासियों को उस पर बसने की अनुमति दी, तो उन्होंने इसका अधिकतम लाभ उठाया। लेकिन सिर्फ सिख ही नहीं, सभी समुदायों को इससे फायदा हुआ है, कुछ को सिखों से भी ज्यादा। उच्च जाति के ब्राह्मण और कुर्मी, लोध, गडरिया, मौर्य, यादव जैसे ओबीसी, जिनमें से कई सिखों से संख्या में बड़े हैं, इससे बड़े पैमाने पर लाभान्वित हुए हैं। उनमें से कई बड़े जमींदार हैं, जो सिखों से बड़े जमींदार हैं। यही वे व्यक्ति हैं जो जिले के बड़े ताकतवर लोग हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि सिख किसानों की कृषि भूमि और खेती से होने वाली आय को बचाने के संघर्ष में सबसे आगे रहे हैं।

भाजपा ने अपनी ओर से पीढ़ियों पहले यहां उजड़े आदिवासियों के प्रति सहानुभूति जताने की कोशिश की है, लेकिन जहां आदिवासी लोग आज अपनी जमीन बचाने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, वहां आदिवासियों के लिए वह कुछ भी नहीं कर रही है। न ही इसने क्षेत्र के थारू और बोक्साओं के आजीविका के अधिकारों को सुरक्षित करने में मदद करने के लिए कोई नीति प्रस्तावित की है। ये आदिवासी जिले की कुल आबादी का सिर्फ 1.2 फीसदी हैं। आज भी ऐसी नीति बनाई जा सकती है और बनाई जानी चाहिए जिससे इनकी आजीविका सुरक्षित हो सके। लेकिन भाजपा का प्रयास स्पष्ट रूप से केवल सिख विरोधी भावना को भड़काने के लिए है, आदिवासियों की मदद करने के लिए नहीं।

विफल रही सांप्रदायिक मुहिम

अन्य जगहों की तरह, स्थानीय भाजपा इकाई किसानों को अपने पक्ष में करने की कोशिश कर रही थी, लेकिन सफल नहीं हुई। यह अलग बात है कि मजबूत संगठन की कमी और सरकारी प्रतिशोध के डर के दोहरे कारणों से लोग खुल कर आगे नहीं आ रहे हैं। पश्चिम यूपी के विपरीत, अन्य हिस्सों में जहां संगठन कमजोर हैं, पुलिस की बर्बरता और प्रशासनिक दंड का भय व्याप्त है और लोग अपेक्षाकृत शांत हैं। बड़ी लामबंदी की कमी भी उनके डर को बढ़ाती है। लेकिन तथ्य यह है कि राज्य में अपने संगठन के जाल और अपनी सरकार के बावजूद, समर्थन जुटाने के लिए भाजपा के प्रयास अभी बंद नहीं हुए हैं।

जब एसयूवी वाहनों ने प्रदर्शन कर रहे किसानों को टक्कर मारी थी, तो मारे गए चार किसानों में लखीमपुर खीरी के लवप्रीत सिंह और नछतर सिंह और बहराइच के गुरविंदर सिंह और दलजीत सिंह मारे गए थे। एक प्रेस रिपोर्टर को भी वाहनों ने कुचल दिया। वह थे रमन कश्यप। वाहन के पलटने से मरने वाले

(शेष पृष्ठ 8 पर)

आगामी जनगणना में जातियों की गणना

देश में एक बार फिर जनसंख्या में जातियों की गणना करने की मांग जोर–शोर से उठने लगी है ताकि जातियों के सापेक्षिक संख्या को सुनिश्चित किया जा सके। भारत सदियों से जातीय उत्पीड़न, निचली जातियों पर हमलों, अत्याचार, पक्षपात, भेदभाव और छुआछूत के सवालों से जूझता रहा है और दलितों व पिछड़ी जातियों के सामाजिक, शैक्षिक व आर्थिक पिछड़ेपन का सवाल भारत की वास्तविकता है। सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष कर रहे तमाम संगठनों की लंबे समय से मांग रही है कि जनगणना में जातियों की भी गिनती की जाए। जातीय उत्पीड़न मुख्य रूप से सामाजिक समूहों के बीच असमानता, उच्च जातियों के हाथों में समान्य रूप से उत्पादन के साधनों का होना और नौकरशाही और न्यायपालिका सहित राज्य मशीनरी के उच्च स्तर पर उच्च जातियों के प्रभुत्व के कारण हैं। संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद भारत में जातीय उत्पीड़न और असमानता का सवाल जिन्दा रहा है।

देश की आबादी के रिकार्ड में पिछड़ी जातियों के अनुपात का कोई आंकड़ा नहीं है। वास्तव में दिलचस्प बात यह है कि एक तरफ इस तरह के आंकड़ों की कमी का इस्तेमाल सकारात्मक कार्रवाई के खिलाफ बहस करने के लिए किया जाता है तो दूसरी तरफ इस तरह के आंकड़े इकट्ठा करने की मांग को पूरी तरह से अस्वीकार कर दिया जाता है। वर्ष 1931 में अंतिम बार जनगणना में जाति संबंधी आंकड़े में एकत्र किए गए थे। मंडल आयोग को समाज में पिछड़ी जातियों के आरक्षण के लिए उस जनगणना के आंकड़ों पर निर्भर रहना पड़ा था। फिर भी जाति जनगणना की मांग लगातार होती रही। प्रति 10 वर्ष पर होने वाली जनगणना में वर्ष 2011–12 में पहले जातियों की गणना से इनकार करने के बाद कांग्रेस नेतृत्व वाली यूपीए–2 सरकार को सामाजिक, आर्थिक और जातीय जनगणना करने के लिए मजबूर होना पड़ा लेकिन जातियों की आबादी से संबंधित आंकड़े जारी नहीं किए गए। दलील यह दी गई कि उक्त आंकड़ों में विसंगतियां थी और इसलिए ये अविश्वसनीय थे।

उच्च जातियों के प्रभुत्व वाले शासक वर्गों और उनके प्रशासनिक तंत्र ने जाति जनगणना कराने का हमेशा विरोध किया है। उन्हें डर है कि आबादी के बीच जातियों की वास्तविक संख्या इस वास्तविकता को उजागर कर देगी कि राज्य की प्रशासनिक सेवाओं, उच्च शिक्षा और अन्य सेवाओं में हिस्सेदारी जहां उच्च वर्गों का वर्चस्व है जिनकी जनसंख्या बहुत कम है। उच्च न्यायपालिका ने भी उच्च जातियों के वर्चस्व को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उन्होंने मनमाने ढंग से संविधान के तहत आरक्षण पर 50 प्रतिशत की सीमा तय कर दी है। हालांकि इस सीमा का संविधान में कोई प्रावधान नहीं है। यह भी एक सच्चाई है कि बढ़ते निजीकरण से सार्वजनिक क्षेत्र में रोजगार के अवसर घटे हैं। आरएसएस–भाजपा का ब्राह्मणवादी हिंदुत्व शासन अल्पसंख्यकों, दलितों और महिलाओं के खिलाफ बढ़ते हमलों, आदिवासियों के उत्पीड़न को बढ़ाने और उनके संवैधानिक अधिकारों को नकारता रहा है।

अब आगामी जनगणना में जातियों की गणना के सवाल पर एक बार फिर शासक वर्गों की पार्टियों सहित देश में व्यापक रूप से चर्चा की जा रही है जबकि पहले से एकत्र किए गए जातीय जनगणना के आंकड़ों को जारी करने का सवाल दबाया जा रहा है। 2012–13 में केंद्र में सत्तारूढ़ यूपीए–2 की सरकार ने सामाजिक–आर्थिक जाति जनगणना के हिस्से के रूप में जातियों के आंकड़े एकत्र किए थे लेकिन तब उसने उसे जारी नहीं किया था। उस समय की शासक वर्गों की जो पार्टियां इन आंकड़ों को जारी नहीं कर रही थीं, अब वह जाति जनगणना कराने के लिए मांग कर रही हैं।

केंद्र सरकार ने 23 सितंबर 2021 को सुप्रीम कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत अपने हलफनामे में कहा है कि वह 2022 में होने वाली अगली जनगणना में जातियों की गणना (सारतः पिछड़ी जातियों की गणना) नहीं कराने जा रही है। इसके लिए कई बेतुके और अतार्किक कारण जैसे ऐसा करना व्यवहारिक नहीं है, देते हुए सरकार ने माना कि ओबीसी की गणना नहीं करना सरकार का एक नीतिगत निर्णय है। कांग्रेस की पिछली सरकार की नीतियों की आड़ लेकर वर्तमान आरएसएस–भाजपा सरकार ने हलफनामे में कहा है कि 1951 में ''सरकार ने जाति को हतोत्साहित करने का आधिकारिक निर्णय लिया था।'' आरएसएस–भाजपा ने हालांकि 2011 में जब वह विपक्ष में था, जाहिरा तौर पर जातिगत जनगणना कराने का समर्थन किया था। तब ओआरजीआई की राय के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि ''जनगणना 2011 के साथ जाति गणना आयोजित करने से जनगणना की पूरी प्रक्रिया खतरे में पड़ सकती है''। इसलिए 2011 में एक अलग सामाजिक और आर्थिक जाति जनगणना की घोषणा की गई जो 2012 में पूर्ण हुई। सुप्रीम कोर्ट में दायर याचिका में उसके जाति संबंधी आंकड़े जारी करने के साथ–साथ आने वाली जनगणना में जाति डेटा एकत्र करने की मांग की गई है।

एसईसीसी–2011 के जाति संबंधी आंकड़ों को अविश्वसनीय बताते हुए और जाति गणना को संभव नहीं मानते हुए केंद्र सरकार ने ऐसे कारणों का खुलासा किया है जो हास्यास्पद हैं। दरअसल वे मुख्य शासक वर्ग दलों सहित शासक राज्य मशीनरी में गहरी पैठ रखने वाले उच्च जातियों अहंकार को प्रतिबिंबित करते हैं। उदाहरण के लिए ''अनाथ अपनी जाति कैसे बता सकते हैं''? लेकिन वही अनाथ अपने धर्म या जनगणना में नियमित रूप से एकत्र किए गए अन्य मापदंडों को कैसे बता सकते हैं? और जिन आंकड़ों के संग्रह का सभी शासक वर्ग पुरजोर समर्थन करते हैं। सरकार के शपथपत्रा में उपजातियों की अलग–अलग वर्तनी का भी उल्लेख किया गया है जो बहुत लंबे समय से मौजूद है और जाति डेटा एकत्र करने में बाधक नहीं रहीं। हलफनामे में जातियों की बड़ी संख्या का भी उल्लेख किया गया है लेकिन यह स्वीकार किया गया है कि महत्वपूर्ण संख्या वाली जातियां केंद्र और राज्य की अनुसूचियों में उल्लेखित हैं। आगे सरकार के इस तर्क को देखा जाए कि जातिय गणना से जनसंख्या की मौलिक गणना विकृत हो सकती है। यह कैसे हो सकता है? ऐसा केवल आरएसएस–भाजपा के मंदारिन या राज्य मशीनरी के शीर्ष पदों पर बैठे शावनिस्ट ही कह सकते हैं।

हलफनामे में जातियों की गणना में कठिनाई का उल्लेख करने के लिए सुप्रीम कोर्ट के इंदिरा साहनी केस के फैसले का भी हवाला दिया गया था, हालांकि उस फैसले में अदालत ने विशेष रूप से उल्लेख किया था, ''चूंकि जाति देश की आबादी के विशाल बहुमत में मौजूद, पहचान योग्य, सामाजिक समूहों का प्रतिनिधित्व करती है, इसलिए हम इसी से शुरुआत कर सकते हैं''। यह निर्णय जाति से शुरू करने के लिए कहता है। विभिन्न न्यायालयों ने इस महत्वपूर्ण और संवेदनशील पहलू पर 1931 के बाद से आंकड़ों की कमी पर अफसोस जताया है। लेकिन शासक वर्गों की पार्टियां सत्ता में रहते हुए इसका विरोध करती हैं और विपक्ष में होने पर इसका समर्थन करती हैं। आरएसएस–भाजपा सरकार तथा पूर्व की शासक वर्गों की सरकारों द्वारा जाति के आंकड़ों (एससी के अलावा जो कि संविधान द्वारा अनिवार्य है और इसलिए उनके पास कोई विकल्प नहीं हैं) को शामिल करने का लगातार विरोध करने के कारण का आभास इस बयान से होता है: ''चूंकि जातियां/एसईसीबीसी/बीसी/ओबीसी राजनीति का अभिन्न अंग का हिस्सा बन गई हैं, राजनीति के प्रेरित या गलत तरीकों से प्रेरित रिटर्न से इनकार नहीं किया जा सकता।'' इसलिए इसके पीछे राजनीतिक कारण है कि मुख्य शासक वर्ग की पार्टियां जाति गणना से इंकार कर रहे हैं। ऊंची जातियों जिनके हितों का वे मुख्यतः प्रतिनिधित्व करती हैं के लिए मुश्किल हो सकता है कि आबादी का काफी छोटा हिस्सा होने के बावजूद समाज में शक्ति और विशेष अधिकारों का बड़ा हिस्सा रखें।

कुछ लोग भ्रामक तर्क देने की कोशिश करते हैं कि असली मुद्दा गरीबी है जो जाति से परे है। परंतु यह धर्म से भी परे है, फिर वह आंकड़े क्यों एकत्र करें! लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि क्यों न यह पता लगाया जाए कि गरीबी और पिछड़ेपन का कोई जातिगत रंग है या नहीं। दावा करकेउस दावे के परीक्षण करने का क्यों विरोध करें। यदि डाटा वास्तव में यह साबित करता है कि सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ेपन और गरीबी का कोई जातिगत रंग नहीं है, तो आंकड़े एकत्र करने से क्यों डरे?

जाति गणना करना व्यवहार्य या विश्वसनीय नहीं होने या जनसंख्या की गणना को खराब करने की सभी बातें निराधार हैं। यदि ऐसा था तो 1951 से पहले की सभी जनगणना पूरी तरह से बेकार हैं। फिर इन्हें रिकॉर्ड बुक और किताबों में क्यों रखा जाता रहा है और बार–बार सरकारें क्यों उन्हें आधिकारिक डेटा बताती रही हैं। और यह सवाल भी उठता है कि औपनिवेशिक सत्ता (अंग्रेजों) के जाने के बाद नौकरशाही अचानक इतनी अक्षम हो गई है। जाहिर है यह कारण पूरी तरह से निराधार हैं। वास्तविक कारण यह है कि जाति गणना उच्च जातियों के एकाधिकार के आधार को कमजोर कर सकता है और सुधारात्मक कार्यों की मांग उठा सकता है कि पिछड़ी जातियों के लोगों की उन्नति और उन्हें आगे बढ़ाने में निवेश किया जाए। जातियों का एक संस्थागत ढांचा होता है और शासक वर्गो के दलों द्वारा इनका नियमित रूप से उपयोग किया जा रहा है, अतः ऐसे उपायों के लिए आरएसएस–भाजपा सरकार के ऊपर दबाव मजबूत हो सकता है। सरकार विदेशी और घरेलू कारपोरेट के हितों को आगे बढ़ाने और उनकी सेवा में सब कुछ कर रही है उस पर पिछड़ी जातियों के लिए व्यय करने का दबाव बढ़ सकता है। राज्य मशीनरी के शीर्ष सोपानों द्वारा इसका समर्थन है जहां उच्च जातियों का वर्चस्व है।

जबकि सरकार ने जैसा कि हलफनामे में उसने बताया है राजनीतिक कारणों से पिछड़ी जातियों की गणना को रोक रखा है वह इस तरह के आंकड़ों के सकारात्मक उपयोग की ओर भी आंख मूंदे है। ये डेटा पिछड़ेपन और गरीबी के खिलाफ लक्षित नीतियों को तैयार करने और डेटा की कमी का हवाला देते हुए ऐसे उपायों का विरोध करने वालों का मुकाबला करने में भी उपयोगी हो सकता है।

सामान्य रूप से एक छोटा कारण यह भी बताया जा रहा है कि इस तरह के डेटा के संग्रह से जातिवाद को बढ़ावा मिलेगा। उच्च जाति के कट्टरवादियों का अक्सर यह तर्क होता है कि जातिवाद को सकारात्मक कार्रवाई द्वारा प्रोत्साहित किया जाता है जबकि सकारात्मक कार्यवाही केवल पहले से ही प्रचलित जाति उत्पीड़न और भेदभाव को दूर करने के लिए होती है जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक पिछड़ापन, अन्याय और यहां तक कि अत्याचार भी होते हैं। इस तर्क को उच्च जाति के कट्टरवादियों द्वारा बार–बार दोहराया जा रहा है जो अन्यथा अपनी जाति को अपनी आस्तीन पर और अपने नाम पर भी पहनते हैं। जातिवाद को प्रोत्साहन करने की जरूरत नहीं है, यह सभी जगह व्याप्त है। जातिवाद को हतोत्साहित करने और उसके उन्मूलन की आवश्यकता है और वह है उच्च जातियों के विशेष अधिकारों का उन्मूलन और सकारात्मक कार्रवाई। जातियों की गणना का विरोध उच्च जातियों के जाति के विशेष अधिकारों और आधिपत्य को बनाए रखने के प्रयासों का हिस्सा है।

वर्तमान सामाजिक आर्थिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए शासक वर्गों की अधिकांश पार्टियां इस मुद्दे पर सबसे अधिक अवसरवादी हैं। मूल रूप से वह या तो इसके विरोध में है या इसके बारे में गंभीर नहीं हैं। यहां तक कि पिछड़ी जातियों के समर्थन पर आधारित पार्टियों ने भी सामाजिक न्याय के मुद्दों को सत्ता में अपनी भागीदारी के अधीन कर दिया है यह मानते हुए कि उनकी भागीदारी अकेले सामाजिक न्याय का पर्याप्त सबूत है। वे आम लोगों को सामाजिक अलगाव, अन्याय और अत्याचार की दलदल में छोड़ देती हैं। 2022 में जाति जनगणना करने से इनकार करने के अलावा एसईसी सी–2011 के जाति आंकड़ों को जारी न करना व कर्नाटक जनगणना के डेटा को जारी न करना भी ध्यान देने योग्य है।

के समर्थन में

कर्नाटक में जाति सर्वेक्षण

जाति के आंकड़ों को जारी करने पर शासक वर्ग की पार्टियों के पाखंड और दोतरफा बोलने का एक ज्वलंत उदाहरण कर्नाटक सरकार द्वारा एकत्र किए गए आंकड़ों को जारी ना करना है। वर्ष 2014 में तत्कालीन मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने एक सामाजिक और शैक्षिक सर्वेक्षण का आदेश दिया था। यह 2015 के अप्रैल और मई में आयोजित किया गया था जिसमें 1.3 करोड़ घरों का सर्वेक्षण करने के लिए 1.6 लाख कर्मियों का इस्तेमाल किया गया था। तत्कालीन राज्य सरकार ने इस कवायद पर लगभग 170 करोड़ रुपए खर्च किए ताकि ओबीसी श्रेणी के तहत कोटा तय किया जा सके। हालांकि सिद्धारमैया सरकार ने सर्वेक्षण का आदेश दिया लेकिन उसने अपने मंत्रिमंडल में प्रमुख जातियों के प्रतिनिधियों के विरोध और राज्य के आर्थिक सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में उच्च जातियों के समग्र वर्चस्व के कारण रिपोर्ट जारी नहीं की। 3 वर्ष तक सत्ता में रहने के बाद भी उसने रिपोर्ट जारी नहीं की इससे यह पता चलता है कि सत्ता में बने रहना सिद्धारमैया जैसे लोगों के लिए अधिक महत्वपूर्ण था। कुछ अन्य पार्टियों की ओर से भी ऐसा ही दोगला व्यवहार देखा जा सकता है। भाजपा गठबंधन राजग का सहयोगी जदयू भी सरकार में है जबकि सरकार जाति जनगणना से इंकार कर रहा है। वहीं राजद जो अब जाति जनगणना को लेकर बहुत शोर कर रहा है यूपीए–2 द्वारा एसईसीसी–2011 के जाति आंकड़ों को जारी न करने पर चुप रहा जबकि वह महत्वपूर्ण घटक था।

कर्नाटक में जाति जनगणना सर्वेक्षण रिपोर्ट 2016 की पहली छमाही में तैयार हो गई थी लेकिन तत्कालीन सरकार ने इसे जारी नहीं किया। भाजपा जो उस समय विपक्ष में थी की मांग थी कि रिपोर्ट जारी की जाए। सिद्धारमैया के नेतृत्व वाली कांग्रेस और जद सेकुलर की एचडी कुमार स्वामी की गठबंधन सरकार के सत्ताच्युत होने के बाद आरएसएस–भाजपा की सरकार बनी लेकिन रिपोर्ट जारी नहीं की गई। इसका कारण तलाशने के लिए बहुत माथापच्ची की जरूरत नहीं है। अगस्त 2016 में उस रिपोर्ट का डेटा मीडिया में लीक हो गया। इससे पता चलता है कि प्रमुख जातियां जैसे लिंगायत और वोक्कालिगा की आबादी आमतौर पर प्रचारित आंकड़ों (लिंगायत 17 प्रतिशत और वोक्कालिगा 14 प्रतिशत) की तुलना में बहुत कम है। मीडिया में आए डेटा के मुताबिक–

जाति/समूह	आबादी	प्रतिशत
एस.सी.	1.08 करोड़	18
मुस्लिम	75 लाख	12.5
लिंगायत	59 लाख	9.8
वोक्कालिगा	49 लाख	8.16
कुरुबा	43 लाख	7.1
एस.टी.	42 लाख	7
ब्राह्मण	13 लाख	2.1

हालांकि कुछ अन्य लीक हुई रिपोर्ट इससे अलग हैं लेकिन उनकी बुनियादी रूपरेखा समान है यानी अनुसूचित जातियां सबसे बड़ा समूह है और दूसरे नंबर पर मुस्लिम हैं। लिंगायत लगभग 10 प्रतिशत, वोक्कालिगा 8 प्रतिशत और ब्राह्मण 2 प्रतिशत यानी तीनों कुल मिलाकर राज्य की आबादी का वह पांचवा हिस्सा हैं।

प्रतीकात्मकता (टोकेनिज्म)

जाति जनगणना जो पिछड़ी जातियों के हित में कदम उठाने के लिए दबाव बना सकती है का विरोध करने के साथ ही शासक वर्गों की पार्टियां मात्र प्रतीकात्मक रवैया अपनाती रही हैं। कर्नाटक में आरएसएस–भाजपा के प्रवक्ता ने जनगणना में जाति गणना को शामिल करने से इनकार करते हुए कहा है कि पार्टी और राज्य प्रशासन में ओबीसी नेताओं को अधिक स्थान प्रदान किया जाएगा। पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के कई नेताओं को शामिल करने के लिए हाल ही में उत्तर प्रदेश योगी सरकार ने कैबिनेट का विस्तार किया है।

शासक वर्गों की पार्टियां पिछड़ी जातियों और अनुसूचित जातियों के चुनावी महत्व को समझती हैं लेकिन वह जाति उत्पीड़न के मूल कारणों को दूर करने से इनकार करती रही हैं, जो उच्च जातियों के हाथों में आर्थिक सत्ता के वर्चस्व में निहित है। यह विशेष रूप से भूमि के मामले में है, जो ग्रामीण क्षेत्रों में विशाल जनता के लिए उत्पादन का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यहां देश के दो तिहाई से अधिक लोग रहते हैं। मौलिक भूमि सुधारों की क्या बात करें उन प्रावधानों को लागू करने का भी विरोध किया जाता है जो पहले से ही कानून की किताबों में है। एक ज्वलंत उदाहरण पंजाब के दलितों का पंचायती भूमि में अपने हिस्से के लिए संघर्ष है। यह केवल वार्षिक पट्टे के लिए है और पंजाब में एक अधिनियम में इसका प्रावधान किया गया है लेकिन फिर भी दलितों के संघर्ष को लगातार दबाया जाता रहा है। पंजाब में कांग्रेस ने एक दलित को मुख्यमंत्री बनाया है लेकिन कांग्रेस सरकार ने जमीन के लिए दलितों के संघर्षों को लगातार दबाया है।

जाति जनगणना के सवाल पर वर्तमान बहस द्वारा महत्वपूर्ण पहलू उजागर किया गया है कि देश में जाति उत्पीड़न, भेदभाव और अन्याय आज भी जारी है और इन्हें ठीक करने के लिए शासक वर्गों की पार्टियों के प्रतीकात्मक कदम विफल रहे हैं। सामाजिक अन्याय का उन्मूलन देश के क्रांतिकारी परिवर्तन से जुड़ा है, विशेषकर इसके विशाल ग्रामीण क्षेत्रों में जहां जाति व्यवस्था को खत्म करने के लिए उत्पादन के साधनों का समतामूलक सवामित्व महत्वपूर्ण होगा। उत्पीड़न, असमानता और भेदभाव का उन्मूलन जातियों के बीच अलगाव को समाप्त करने में सहायक होगा।

जाति जनगणना मात्र एक शुरुआत हो सकती है। यह एक लोकतांत्रिक मांग है जिसका समर्थन किया जाना चाहिए। हालांकि इसमें एक ऐसी प्रक्रिया शुरू करने की भी क्षमता है जो सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के वर्तमान प्रभावी रूप को शासक वर्गों के चंगुल से मुक्त कर सके। यह सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष में लोगों को गोलबंद करने में मदद कर सकती है। यह संघर्ष देश की जनता के क्रांतिकारी आंदोलन का अभिन्न अंग है।

विशाखा स्टील के निजीकरण के खिलाफ मार्च व जन सभा

(पृष्ठ 1 का शेष)

राष्ट्रीय समिति के सचिव और आंध्र प्रदेश इफ्टू समिति के अध्यक्ष का. पी. प्रसाद को बैठक की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया। वक्ताओं में सुश्री मेधा पाटकर, का. अपर्णा, पीओडब्ल्यू राज्य महासचिव का. लक्ष्मी, एआईकेएमएस के राज्य अध्यक्ष का. आई. प्रभाकर, आंध्र प्रदेश राज्य समिति इफ्टू के उपाध्यक्ष का. एम. वेंकटेश्वरलू, गुजवाका के विधायक श्री टिप्पला नागी रेड्डी, एआईटीयूसी के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष आदिनारायण, जिले के सीटू नेता श्रीनिवास, इंटक जिला मंत्री राजशेखर, वाईएसआरटीयूसी उपाध्यक्ष और ग्रामीण जिला अध्यक्ष वाई मस्तानप्पा, टीएनटीयूसी जिलाध्यक्ष विला राममोहन कुमार, इस्पात संयंत्र विस्थापित और अनुबंध श्रमिक संघ के अप्पाराव, लेखक अकादमी के अध्यक्ष श्री रमण मूर्ति, एमएनएसएस के नगर अध्यक्ष का. के रवि, सोमपेटा पर्यावरण परिरक्षण समिति के डा. कृष्णमूर्ति, स्टील प्लांट के विस्थापित व युवा श्रमिक नेता कनक रेड्डी और अच्छी बाबू, आंध्र प्रदेश पीडीएसयू महासचिव का. एस राममोहन और अरूणोदय के राज्य नेता का. सन्नाशेट्टी राजशेखर शामिल थे।

सभा की शुरुआत का. पी प्रसाद द्वारा स्टील प्लांट में अब तक हुये संघर्षों का इतिहास पेश करने और 32 लोगों की शहादतों के विवरण से हुई।

हजारों लोगों की विशाल जनसभा को संबोधित करते हुए मेधा पाटकर ने मोदी सरकार द्वारा भारत की जनता की संपत्ति सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनियों को बेचने की निंदा करते हुए कहा कि इससे एससी और एसटी समुदायों का आरक्षण का सवाल ही खत्म हो जाएगा। जल, जमीन, जंगल और रोजगार सहित आजीविका के तमाम स्रोत भी छिन जाएंगे। मोदी सरकार के निजीकरण की नीतियों के खिलाफ सड़कों पर बड़े विरोध प्रदर्शन का आह्वान करते हुए उन्होंने स्टील प्लांट की यूनियनों और प्लांट के विस्थापितों से अलग–अलग आंदोलन चलाने के बजाय एकजुट हो कर बड़ी लड़ाई छेड़ने की अपील की।

का. अपर्णा ने कहा कि विशाखा को बचाने का संघर्ष एक देशभक्ति का संघर्ष है जैसा कि भारत के किसानों ने तीन काले कृषि कानून के खिलाफ आंदोलन छेड़ रखा है। जातिवाद और सांप्रदायिकता के आधार पर लोगों को बांटने वाली मोदी सरकार का असली चेहरा यह है कि वह देश भर में जनता के पैसे से और देश के निर्माण के नाम पर किसानों से छीनी गई जमीन पर बनाए गए सार्वजनिक क्षेत्र को लूटने के लिए कारपोरेट के हाथों सौंप रही है। दुनिया भर में कारपोरेट जमीन हथियाना चाहते हैं क्योंकि जमीन सदैव कीमती संपत्ति है, जिसकी कीमत हमेशा बढ़ती ही जानी है। विशाखा बचाओ संघर्ष में इफ्टू की पूर्ण भागीदारी को दोहराते हुए उन्होंने कहा कि सभी तरह की ताकतों और ट्रेड यूनियनों को संयुक्त रूप से विशाखा स्टील बेचने के प्रयासों को रोकने की जरूरत है क्योंकि यह अन्य सार्वजनिक उपक्रमों को जो निजीकरण के लिए अभिशप्त हैं. उनको बचाने का रास्ता भी दिखाएगा।

राइटर्स एकेडमी के अध्यक्ष और लीडर्स अखबार के संपादक श्री रमण मूर्ति ने कहा कि इस कार्यक्रम के साथ इस क्षण से यह संघर्ष एक जन आंदोलन में बदल गया है। अन्य वक्ताओं ने भी इस्पात संयंत्र को बचाने के लिए जोरदार संयुक्त लड़ाई की आवश्यकता के बारे में विस्तार से अपनी बातें रखीं। सभा में अरुणोदय के कलाकारों विशेष रूप से महिला कलाकारों के गीत, संगीत और नृत्य ने नई ऊर्जा का संचार किया। उनमें से अधिकांश गीत स्टील प्लांट की बिक्री के खिलाफ रची गई नई रचनाएं थीं।

विशाल मार्च और सभा की तैयारी के लिए आंदोलन से जुड़े संगठनों ने 16 सितंबर से ही घर–घर जाकर जनसंपर्क अभियान शुरू कर दिया था। 24 अक्टूबर 2021 को स्टील प्लांट के शहीद स्मारक ''स्मृतिंजलि'' पार्क में लगभग 80 बाइकों के साथ बाइक रैली का आयोजन किया गया। 29 अक्टूबर को का. अपर्णा, का. पी प्रसाद और एक टीम ने 2 विस्थापित गांवों का दौरा किया और विस्थापितों की तकलीफों को दर्ज किया। सुश्री मेधा पाटकर, का. अपर्णा, का. प्रसाद, का. लक्ष्मी, का. एमवी, का. टी प्रकाश, का. निर्मला, का. रविचंद्र, का. राममोहन आदि नेता 30 अक्टूबर की सुबह उक्कू परीक्षण पोराटा समिति और विस्थापितों की समिति द्वारा 261 दिन से चल रहे क्रमिक अनशन स्थल गये। उसी दिन विस्थापित गांव कर्णवानीपलेम का विशेष दौरा किया गया। हर जगह टीम ने स्थानीय लोगों और प्रेस को संबोधित किया, जिसके चलते इस आंदोलन ने आम लोगों का ध्यान और आकर्षित किया है।

पत्रिका के नियमित प्रकाशन के लिए सभी पाठकों से अनुरोध

पिछले अंक से पत्रिका का प्रकाशन पुनः शुरु किया गया है। हम इसे नियमित प्रकाशित करने की आशा रखते हैं तथा इसके लिए पाठको से सहयोग की अपेक्षा रखते हैं।

- *कृपया पत्रिका की प्रतियों की राशि समय पर पहुंचाएं।*
- *पत्रिका के लिए लेख व रिपोर्ट नियमित रूप से भेजें।*
- *पत्रिका के ग्राहक बढ़ाने में सहयोग करें।*
- *पत्रिका के बारे में अपने सुझाव भेजें।*

गरीबों की खाद्यान्न योजनाएं शासकों की आंकड़ों की बाजीगरी

अनिल दुबे

दक्षिण अफ्रीका के फोटोजर्नलिस्ट केविन कार्टर ने अफ्रीकी देश सूडान में 1993 में पड़े अकाल के वक्त भूख से तड़पते और मृत्यु के नजदीक पहुंच चुकी बच्ची की फोटो खींची थी। फोटो में एक गिद्ध भी था जो लार टपकाते हुए बच्ची की मौत का इंतजार कर रहा था। कार्टर को इस फोटो के लिए पत्रकारिता का विख्यात पुलित्जर पुरस्कार मिला। बाद में एक कार्यक्रम के दौरान एक पत्रकार द्वारा यह पूछने पर कि वहां कितने गिद्ध थे ? कार्टर ने कहा एक। पत्रकार ने कहा नहीं दो थे, एक के हाथ में कैमरा था। इसके कुछ समय बाद ही कार्टर ने आत्मग्लानि में आ कर आत्महत्या कर ली। इस वास्तविक घटना का उल्लेख इस संदर्भ में देखा जाना चाहिए कि बीते डेढ़ दशकों से भारत में खाद्यान्नों का उत्पादन प्रतिवर्ष अपना ही रिकॉर्ड तोड़ता जा रहा है जिसके लिए शासक वर्गों की पार्टियां चाहे जो भी सत्ता में हों अपनी पीठ ठोकती रही हैं। फिर भी विश्व भूख सूचकांक के वैश्विक आंकड़ों में भारत का स्तर गिरता जा रहा है। आरएसएस–भाजपा की केंद्र सरकार ने कोरोना महामारी के दौरान 80 करोड़ लोगों को प्रतिमाह 5 किलो अनाज मुफ्त देने की योजना चलाई। इसके बावजूद 1993 में भुखमरी की शिकार सूडान की बच्ची जैसे दृश्य भारत के कई राज्यों में आम हैं जो बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, झारखंड आदि राज्यों में देखे जा सकते हैं। दुनिया भर के कुल कुपोषित बच्चों में 25% बच्चे भारत में हैं, लेकिन कारपोरेट मीडिया में अब कोई केविन कार्टर ऐसी फोटो के लिए अपना एयर कंडीशंड ऑफिस नहीं छोड़ता।

भारत में बढ़ता खाद्यान्न उत्पादन और गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों के लिए राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम (एनएफएसए), प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना, अंत्योदय अन्न योजना और प्राथमिकता वाले परिवार योजना के साथ ही 36 राज्यों के लगभग 80 करोड़ लोगों को कोरोना महामारी के बाद से 5 किग्रा अनाज प्रति व्यक्ति प्रति माह की दर से वितरित करने का दावा सरकार कर रही है, लेकिन वैश्विक भूखमरी सूचकांक वाले देशों की सूची में भारत पिछले वर्ष के अपने 94वें स्थान से गिरकर 101वें स्थान पर आ गया है। वैश्विक भूख सूचकांक में भारत की जनता के खराब स्थिति में आने, प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्न उपलब्धता का घटते जाना और देश के 70% गरीबों को भोजन में आवश्यक प्रतिदिन 2400 कैलोरी ना मिलने की बात– तीन दशक पुराने उस दृश्य को भारत में रोज दोहराते देखा जा सकता है। दरअसल खाद्यान्न उत्पादन लगातार बढ़ते जाने के बावजूद लोगों को पर्याप्त भोजन न मिल पाना और लाखों लाख टन खाद्यान्नों का मुफ्त वितरण करने के दावों में आंकड़ों का जबरदस्त खेल है।

शासक वर्ग आंकड़ों की बाजीगरी के जरिए अपने विकास के दावों और जनता के खून पसीने से बने सार्वजनिक क्षेत्रों के उपक्रमों की बिकवाली को इसलिए भी जायज ठहराते हैं कि एक बड़ी आबादी को मुफ्त भोजन दिया जा रहा है, जबकि जमीनी हकीकत यह है कि आबादी के अनुरूप खाद्यान्न उत्पादन ही नहीं बढ़ रहा है क्योंकि कई दशकों से कृषि क्षेत्र को लगातार हतोत्साहित किया गया है। कांग्रेस की गठबंधन सरकार और अब आरएसएस–भाजपा की सरकार ने भी कृषि क्षेत्र की उन्नति के लिए आवश्यक निवेश नहीं बढ़ाया है क्योंकि शासक वर्गों की नजर दुनिया की सर्वाधिक उपजाऊ जमीन पर रही है जिसे वह देश के ही नहीं बल्कि विदेशी कारपोरेट कंपनियों को सौंप देना चाहते हैं। इससे किसान जमीन और अपनी खेती से ही वंचित नहीं होंगे बल्कि 135 करोड़ की विशाल आबादी की खाद्यान्न सुरक्षा का सवाल भी बाजार के भरोसे छोड़ दिया जाएगा। इसीलिए कोरोना महामारी की पहली लहर के दौरान आरएसएस–भाजपा की नरेंद्र मोदी सरकार तीन कृषि कानून इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए लाई है।

देश में खाद्यान्न उत्पादन की स्थिति यह है कि वर्ष 2020–21 के लिए 30 करोड़ टन खाद्यान्न उत्पादन का लक्ष्य रखा गया है जो पिछले वर्ष के मुकाबले 2% अधिक है। 2019–20 में 29 करोड़ 66 लाख टन खाद्यान्न उत्पादन हुआ था। इसमें लगभग धान 11.96 और गेहूं 10.80 करोड़ टन है। बाकी अन्य फसलें मोटे अनाजों, दलहन, तिलहन आदि के रूप में हैं। सरकार और कारपोरेट मीडिया खाद्यान्न उत्पादन के इन आंकड़ों को वर्ष दर वर्ष रिकॉर्ड तोड़ने वाला बताता रहा है लेकिन वह यह नहीं बताता कि देश में वर्ष 1991 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्न उपलब्धता 510 ग्राम थी जो अब घटकर 490 ग्राम प्रतिदिन रह गई है। इस बाबत संसद में और बाहर भी सरकारें दलील देती रही हैं कि बीते दशकों में सब्जियों, डेयरी उत्पादों, मांस, मछली, फल के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। इसलिए लोगों के खाने में उनकी खपत बढ़ी है तो अनाज की खपत में कमी आई है।

यह दलील वैश्विक भूख सूचकांक के आंकड़ों और विश्व स्वास्थ्य संगठन की रपटों के विपरीत है जो बताते हैं कि भारत में कुपोषण की समस्या कितनी गंभीर होती जा रही है। खास तौर पर कोरोना महामारी के बाद करोड़ों लोगों के रोजगार चले जाने, वेतन कटौती और रेहड़ी, पटरी, खोमचा, रिक्शा, ऑटो चालकों के रोजगार में कमी आई है जिससे गरीबों की संख्या बढ़ी है। रोजगार व भोजन की कमी के कारण देश में आत्महत्या करने वालों की संख्या बढ़ी है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो की ''भारत में दुर्घटना में मृत्यु और आत्महत्या'' संबंधी 2020 की रिपोर्ट में दिहाड़ी मजदूरों ने सर्वाधिक आत्महत्या की है, जो कोरोना संकट के समय अचानक लगे लंबे लॉक डाउन, बंद हो गए उद्योग धंधों और करोड़ों लोगों के पलायन का परिणाम है। बीते वर्ष एक लाख 53 हजार लोगों ने आत्महत्या की, जिसमें से 37000 केवल दिहाड़ी मजदूर थे। इनमें मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तेलंगाना और गुजरात के मजदूरों की संख्या अधिक है। देश के लिए यह एकदम नया ट्रेंड है। अभी तक किसान और शहरी मध्यवर्ग में ही आत्महत्या की घटनाएं ज्यादा होती रही हैं। आत्महत्या के मामले में स्कूली छात्रों, युवाओं और व्यापारियों में भी यह ट्रेंड बढ़ा है क्योंकि रोजगार की कमी और बाजार में मंदी इसकी बड़ी वजह है। यही कारण है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने भारत में गरीबों की संख्या बढ़ने, खाद्यान्न संकट और एक बड़ी आबादी के कुपोषण पर चिंता जताई है।

वर्ष 1996 से पूर्व देश में सभी के लिए राशन कार्ड पर खाद्यान्न उपलब्ध था लेकिन संयुक्त मोर्चा सरकार ने उसे समाप्त कर दिया। जनता दल की संयुक्त मोर्चा सरकार में शामिल सीपीआई और बाहर से समर्थन कर रही सीपीएम व कांग्रेस की सरकार ने टारगेटेड पीडीएस लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली कानून संसद से पारित किया था। तब से अब तक गरीबी की रेखा से नीचे की आबादी और देश की भारी– भरकम आबादी के भोजन का सवाल और उसके लिए शुरू की गई खाद्यान्न वितरण योजनाओं को आंकड़ों की बाजीगरी से जोड़ दिया गया है। कोरोना संकट काल में 5 किलो राशन 80 करोड़ लोगों को बांटने का दावा नरेंद्र मोदी सरकार कर रही है, लेकिन इतनी बड़ी संख्या को आबंटित होने वाले खाद्यान्न और उसकी धनराशि में भारी विरोधाभास है।

जुलाई 2021 में ग्रामीण विकास तथा उपभोक्ता मामले खाद्य और सार्वजनिक वितरण राज्यमंत्री साध्वी निरंजन ज्योति ने लोकसभा में लिखित जवाब में बताया कि वर्ष 2020–21 के दौरान आपदाओं व अन्य कारणों से प्रधानमंत्री गरीब कल्याण योजना और आत्मनिर्भर भारत के तहत सरकार द्वारा एनएफएसए और अन्य कल्याणकारी योजनाओं के तहत सभी राज्यों को 948.37 लाख टन खाद्यान्नों का आबंटन किया गया है। इस राशन को यदि प्रति व्यक्ति 80 करोड़ लोगों में वितरित किया जाए तो यह प्रति दिन प्रति व्यक्ति 118 ग्राम पड़ता है। वर्ष 2020–21 में सभी तरह की खाद्यान्न योजनाओं के लिए एक लाख 11 हजार 259 करोड़ रुपए खर्च किए गए हैं। राज्यमंत्री ज्योति ने एक अन्य सवाल में बताया कि 8 माह के लिए वर्ष 2020 में 80 करोड़ लाभार्थियों के लिए 5 किग्रा प्रति व्यक्ति प्रति माह निःशुल्क खाद्यान्नों का आबंटन किया गया। वर्ष 2020 के दौरान 322 और 2021 के दौरान 278 लाख टन खाद्यान्न आबंटित किए गए थे।

आरएसएस–भाजपा सरकार के बड़े पैमाने पर खाद्यान्न वितरण के दावों के बावजूद दुनिया भर की सर्वे करने वाली संस्थाएं भारत में भूख कुपोषण और गरीबी को लेकर चिंता जाहिर कर रही हैं। वर्ल्ड इकोनामिक फोरम ने जून 2021 में कहा कि भारत में कोविड–19 के कारण भूख और गरीबी का संकट भयावह रूप ले रहा है। उसने सुझाव दिया कि तात्कालिक खाद्य आवश्यकता की पूर्ति और जीवन यापन के अवसर उपलब्ध कराना दोनों ही जरूरी हैं। प्यू रिसर्च सेंटर ने अनुमान व्यक्त किया कि भारत में कोविड–19 के कारण गरीबों की संख्या में 7 करोड़ 50 लाख नए लोग जुड़ गए हैं। इस सब के बावजूद 28 फरवरी 2021 को नीति आयोग के हवाले से खबर आई कि सरकार को खाद्य सुरक्षा कानून के तहत ग्रामीण इलाकों की 75% और शहरी इलाकों की 50% आबादी के कवरेज को घटाकर 60% और 40% कर देना चाहिए। इससे सरकार को 47 हजार 229 करोड़ रुपए की बचत होगी।

भारत दुनिया भर में दूध और दालों का सबसे बड़ा उत्पादक देश है जबकि चावल, गेहूं, गन्ना, सब्जियों, फलों और मछली व मांस का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक देश है। राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम 75% ग्रामीण आबादी और 50% शहरी आबादी को टीपीडीएस के तहत सस्ते दर पर खाद्यान्न प्राप्त करने का अधिकार देता है। देश की आजादी के बाद बढ़ते खाद्यान्न उत्पादन और एक बड़ी आबादी को रियायती दर पर भोजन उपलब्ध कराने के बावजूद वैश्विक भूख सूचकांक में भारत के श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल और पाकिस्तान से भी नीचे जाना आरएसएस–भाजपा सरकार की योजनाओं और उनको अमलीजामा पहनाने के तरीकों पर गंभीर सवाल उठाता है।

भारत 2020 में ग्लोबल हंगर इंडेक्स (जीएचआई) में 94वें स्थान पर था जो 2021 में फिसल कर 101 पर आ गया है। यह सूचकांक भोजन की कमी व अल्प पोषण को परिभाषित करता है जो व्यक्ति के लिंग, आयु, कद को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ जीवन जीने के लिए आवश्यक न्यूनतम मात्रा में आहार और कैलोरी की खपत को देखता है। जीएचआई देश को सब अंको के पैमाने पर प्राप्त अंको पर आधारित है। इसमें श्रीलंका की रैंकिंग 65, नेपाल 70, बांग्लादेश 76 और पाकिस्तान की रैंकिंग 92 वें स्थान पर है। इससे यह साफ है कि भारत में एक बड़ी आबादी को दिन में दो बार के भोजन गेहूं चावल के साथ प्रोटीन आधारित खाद्य पदार्थ दाल, दूध, सब्जियां, अंडा, मछली, मांस नहीं प्राप्त हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप लोग कुपोषण का शिकार हो रहे हैं और इसकी सर्वाधिक कीमत महिलाएं और बच्चे चुका रहे हैं।

ग्लोबल हंगर इंडेक्स रिपोर्ट में भारत में भूख के स्तर को खतरनाक बताया गया है। 5 साल से कम उम्र के 46% बच्चे कुपोषित हैं और 70% आबादी प्रतिदिन आवश्यक 2400 की कैलोरी से कम कैलोरी का भोजन खा रही है। हैरत की बात यह है कि इतने व्यापक कुपोषण के बावजूद बच्चों के पोषण के लिए वर्ष '21–22 के केंद्रीय बजट में मात्र 0.57% आबंटन रहा है। 2015–16 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण में 5 साल से कम उम्र के 35.7%, 38.4 और 21.0% कम वजन वाले, अविकसित और निर्बल पाए गए। एक तिहाई से अधिक कुपोषित बच्चे भारत में हैं जबकि विश्व की आबादी का लगभग छठा हिस्सा भारत में है।

भारत में कम वजन के बच्चों की संख्या उप सहारा अफ्रीका से लगभग दोगुनी है। महिलाओं के कुपोषित होने का सीधा मतलब है कि आने वाली नस्लों यानी स्वस्थ बच्चे की संभावना कम हो जाती है। पोषण की कमी व्यक्तियों को ही नहीं समाज को भी लंबे समय तक नुकसान पहुंचाती है। पोषण की कमी वाले व्यक्तियों में निमोनिया और तपेदिक जैसे संक्रामक रोग अधिक होने से उनकी मृत्यु दर अधिक होती है। विश्व बैंक का अनुमान है कि कुपोषण से पीड़ित बच्चों की संख्या के मामले में भारत दुनिया के सर्वोच्च रैंकिंग वाले देशों में से एक है। भारत में कम वजन वाले बच्चों की व्यापकता दुनिया में सबसे अधिक है। भारत के महापंजीयक जनगणना के अनुसार प्रत्येक 1000 जीवित जन्म लेने वाले बच्चों में से 5 वर्ष से कम आयु के बच्चों की मृत्यु दर लगभग 59

गरीबों की खाद्यान्न योजनाएं शासकों की आंकड़ों की बाजीगरी

थी, जो दुनिया में सबसे अधिक दरों में से एक है। ''सेव द चिल्ड्रन'' के अनुसार यह मुख्य रूप से बच्चों में कुपोषण के कारण 5 साल से कम उम्र के बच्चों में 68% मृत्यु कुपोषण के कारण होती हैं

देश में 2019 में प्रति व्यक्ति अनाज की उपलब्धता 490 ग्राम प्रतिदिन याने वर्ष में 176 किग्रा थी, जबकि 1991 में यह 510 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन थी। इससे साफ जाहिर है कि टीपीडीएस प्रणाली देश के खाद्यान्न सवालों को हल करने में विफल है। राजग सरकार के कार्यकाल में गठित आयोग ने सुझाव दिया था कि एमएसपी उत्पादन की सीटू लागत पर आधारित हो जिसमें पारिवारिक श्रम, स्वामित्व वाली पूंजी और स्वामित्व वाली भूमि पर किराए सहित सभी लाभों को जोड़ा जाना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया था कि एमएसपी अधिक व्यापक हो और इसे कानूनी दर्जा दिया जाए ताकि देश के लोगों की पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए एक सार्वभौमिक सार्वजनिक वितरण प्रणाली को फिर से शुरू किया जा सके।

आयोग ने सरकार द्वारा समर्थित तथाकथित लक्षित पीडीएस प्रणाली से असहमति व्यक्त की थी। समिति की सिफारिश थी कि टीपीडीएस को गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों से अलग कर दिया जाए और गरीबी उन्मूलन के लिए अलग से कार्यक्रम चलाए जाने चाहिए। इसके विपरीत पीडीएस को गरीबी उन्मूलन का एक हिस्सा बनाकर सभी सरकारें और अधिक लोगों को गरीबी की रेखा से नीचे धकेलने का काम करती रही हैं। फिलहाल आयोग की सिफारिशों को भाजपा की राजग और फिर कांग्रेस की संप्रग 1–2 सरकारों ने कूड़ेदान में फेंक दिया। अब मोदी के नेतृत्व वाली आरएसएस–भाजपा सरकार ने खुलकर अमीरों और कारपोरेट की सेवा करने के लिए करोड़ों लोगों की खाद्यान्न जरूरतों को पूरा करने का ढोंग करना भी छोड़ दिया है और कृषि कार्यों में लगी देश की 50% से अधिक आबादी को कृषि से बाहर करने और किसानों को जमीन से बेदखल करने के लिए तीन काले कानूनों को संसद से पारित कर दिया है।

केंद्र सरकार ने वैश्विक भूख सूचकांक के आंकड़ों को खारिज करते हुए उसे अविश्वसनीय बताया है लेकिन सरकार ने अपने वर्ष 2021–22 के बजट में शिशु और माता के पोषण से संबंधित योजनाओं के लिए आबंटन में भारी कटौती की है जो उसकी नियति को दर्शाता है। आंगनबाड़ी का 2020–21 में 20,532 करोड़ का बजट था जबकि 2021–22 में आईसीडीएस को केंद्र की सक्षम योजना, पोषण अभियान और अन्य योजनाओं के साथ जोड़ दिया गया और मात्र 20,105 करोड़ रुपए का बजट रखा गया जबकि पिछले वर्ष सक्षम योजना का ही बजट 24,557 रूपए था। बजट में 2020–21 में मिड डे मील के लिए 11,500 करोड़ रुपए का प्रावधान किया गया है जबकि 2020–21 के संशोधित बजट आंकलन के अनुसार इसके लिए 12,900 रूपए की राशि का आबंटन था। सरकार वैश्विक भूख सूचकांक के आंकड़ों से भले ही पल्ला झाड़ ले लेकिन जून 2021 में महिला एवं बाल विकास मंत्रालय ने आरटीआई के तहत पूछे गए एक सवाल के जवाब में बताया था कि पिछले साल नवंबर तक देश में 6 महीने से 6 साल तक के करीब 9 लाख 27 हजार 606 गंभीर रूप से कुपोषित बच्चों की पहचान की गई है।

देश की खाद्यान सुरक्षा का सवाल कृषि उत्पादन और उससे भी आगे किसानों की संकटपूर्ण स्थिति से जुड़ा हुआ है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 77 वें दौर की रिपोर्ट में देश के किसानों की बदहाल स्थिति की एक झलक मिलती है कि किस तरह देश की एक विशाल आबादी को सरकारों ने किनारे फेंक दिया है। सर्वेक्षण में जून 2018 से जून 2019 के बीच एकत्र किए गए आंकड़ों को शामिल किया गया है। सर्वेक्षण के अनुसार 17 करोड़ 24 लाख 33 हजार ग्रामीण परिवारों में से 54% कृषक परिवार से हैं 46% गैर कृषक परिवार हैं। कृषक परिवारों में से 88-1% परिवारों के पास 2 हेक्टेयर से कम जमीन है। छोटे और सीमांत किसान बीते 1 वर्ष से चल रहे किसान आंदोलन में अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे हैं और संघर्ष की रीढ़ बने हुए हैं। मौजूदा किसान आंदोलन सिर्फ किसानों और कृषि के सवालों को ही नहीं उठा रहा है बल्कि वह देश की खाद्यान्न जरूरतों और भुखमरी के सवाल को भी समेटे हुए है क्योंकि खेती का कॉरपोरेटाइजेशन लोगों को उनकी दैनिक खाद्यान्न जरूरतों की पहुंच से दूर कर देगा। इसलिए शासक वर्गों को छोड़कर देश में जो लोग भी रोटी खाते हैं उन्हें किसान आंदोलन के साथ व्यापक एकजुटता दिखानी होगी।

म्यांमार : सैनिक शासन का विरोध

(पृष्ठ 2 का शेष)

लोकतंत्र के एक सेनानी के रूप में अपनी जमीन खो देने के बाद सू ची को सेना ने उनकी सही जगह दिखा दी।

अंतर साम्राज्यवादी अंतर्विरोध और सैन्य तख्तापलट

यह सैन्य तख्तापलट संयुक्त राज्य अमेरिका और चीन के बीच बढ़ते विवाद की पृष्ठभूमि में म्यांमार में गहराते आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संकट के परिदृश्य में हुआ है। अमेरिका चीन को आगे बढ़ने से रोकने के लिए एक एशियाई गठबंधन खड़ा कर रहा है। अमेरिका म्यांमार में चीनी रणनीतिक खेल को रोकना चाहता है। अमेरिका और अन्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देश सू ची का समर्थन कर रहे हैं व उन्हें अपने हितों की रक्षा के लिए सबसे अच्छा मानते हैं। चीन, रूस और अन्य देश सैन्य तख्तापलट की आलोचना से बचते रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में चीन और रूस ने सैन्य हमले की कड़ी निंदा करने पर भी आपत्ति जताई। सख्त प्रतिबंध लगाने की बात तो छोड़िए दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के संगठन आसियान ने म्यांमार के सैनिक तानाशाह आंग ह्वाईंग की उपस्थिति में एक शिखर सम्मेलन में 5 सूत्री प्रस्ताव रखा हालांकि म्यांमार की सेना ने आसियान से वैधता मांगने के अलावा उसके फार्मूले को भी लागू करने से इंकार कर दिया है और प्रदर्शनकारियों के खिलाफ हिंसा तेज कर अपनी शर्तों पर अड़ी है।

म्यांमार अमेरिका और चीन के बीच अंतर्विरोध के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में से एक के रूप में उभरा है। म्यांमार में चीन सबसे बड़ा निवेशक है म्यांमार के खनिज संसाधनों के अलावा चीन के वहां सामरिक हित भी हैं। चीन ने अपने 'बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव' में म्यांमार को शामिल किया है, बंदरगाहों के लिए सड़कों का निर्माण किया है ताकि मध्य पूर्व और अफ्रीकी देशों की दूरी को कम किया जा सके, जहां से वह कच्चा माल और तेल प्राप्त करता है। साथ ही साथ यूरोप और अन्य क्षेत्रों में अपना निर्यात बढ़ाने के लिए भी वह सक्रिय है। वह व्यापार के लिए भौगोलिक दूरी कम करने के साथ ही अपने प्रतिद्वंदियों से बचने के लिए पूर्व के अपने बंदरगाहों का विकल्प तलाश रहा है। पारंपरिक रूप से चीन म्यांमार की सेना, एनएलडी और अल्पसंख्यक राष्ट्रीय समूहों के साथ अच्छे संबंध बनाए हुए हैं। अपने हितों की रक्षा के लिए चीन ने सैन्य तख्तापलट को घरेलू मामला करार दिया था जिससे प्रदर्शनकारियों में आक्रोश है। विरोध प्रदर्शनों ने चीनी स्वामित्व वाली फैक्ट्रियों में तोडफोड़ हुई है।

म्यांमार के सैन्य शासक सत्ता में अपने अस्तित्व के लिए बढ़ते अंतर–साम्राज्यवादी अंतर्विरोधों का उपयोग करने की कोशिश कर रहे हैं। सैन्य शासक विदेशी पूंजीपतियों पर भरोसा कर रहे हैं जो अपने मुनाफे को अधिक महत्व देते हैं और अपने निवेश को तब तक बनाए रखते हैं जब तक उनका मुनाफा सुनिश्चित रहे।

भारत सरकार की प्रतिक्रिया

भारत सरकार ने म्यांमार में लोकतांत्रिक परिवर्तन के लिए और विशेष रूप से एनएलडी को अपने पूर्व में दिए गए समर्थन की नीति को छोड़ दिया है। उसके प्रारंभिक बयान में सैन्य तख्तापलट का विरोध अस्पष्ट था। इसने लोकतांत्रिक संक्रमण की आम बात की थी जबकि सैन्य तख्तापलट नें इस तरह के संक्रमण को बाधित कर दिया है। इसके अलावा भारत उन 8 देशों में शामिल था जिनके राजनयिक सेना दिवस परेड में शामिल हुए थे। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह कि भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने पूर्वोत्तर राज्यों की सभी सरकारों से कहा था कि वह शरणार्थी शिविर स्थापित ना करें क्योंकि बड़ी संख्या में लोग पूर्वोत्तर के सीमावर्ती राज्यों में आ रहे थे। देश के लोकतांत्रिक और मानवाधिकारवादी संगठनों ने इसकी निंदा की थी। भारत सरकार रोहिंग्या शरणार्थियों को समायोजित करने के लिए विशेष रूप से विद्वेषपूर्ण नीति अपनाती रही है। उनके मुस्लिम होने का सत्तारूढ़ आरएसएस– भाजपा द्वारा सांप्रदायिक ध्रुवीकरण के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

भारत सरकार म्यांमार में उभरती स्थिति से निपटने में कई विरोधी खिंचावों से प्रभावित है। एक तरफ अमेरिका और पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतें सैनिक शासकों के खिलाफ हैं मुख्य रूप से चीनी योजनाओं को बाधित करने के लिए। नहीं तो ये साम्राज्यवादी शक्तियां, कई देशों में सम्राटों, सैन्य तानाशाहों की मित्र हैं। भारत सरकार उनके विशेष निकट है। दूसरे म्यांमार भारत का पड़ोसी देश है चीन को वहां कोई फायदा ना मिले इसके लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। इसके अलावा भारत के सत्तारूढ़ आरएसएस भाजपा क्षेत्र में एक व्यापक मुस्लिम विरोधी गठबंधन बनाने के अपने प्रयास के एक हिस्से के रूप में सेना के करीबी बौद्ध भिक्षुओं के साथ घनिष्ठ संबंध बनाए हुए है। आरएस एस–भाजपा सरकार म्यांमार में सैन्य शासन पर दोहरी नीति अपना रही है।

म्यांमार में बढ़ रहा जन प्रतिरोध

सैन्य तख्तापलट के खिलाफ लोगों का प्रतिरोध बढ़ रहा है और विभिन्न वर्ग उसमें आगे आ रहे हैं। यह आंदोलन अलग–अलग रूप लेता जा रहा है। गिरफ्तारी से बचे एनएलडी सांसदों ने समानांतर राष्ट्रीय एकता सरकार (एनयूजी) का गठन किया है और उन्होंने उसे म्यांमार की वैध सरकार के रूप में मान्यता देने की मांग की है। एनयूजी ने पीपुल्स डिफेंस फोर्स (पीडीएफ) का गठन किया है हालांकि यह एक अल्पविकसित ताकत है लेकिन यह एनएलडी नेताओं की एक नई पहल है। अल्पसंख्यक क्षेत्रों में पीडीएफ के कुछ प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए गए हैं। एनयूजी ने म्यांमार के सैन्य हमलों का विरोध करने के अल्पसंख्यक राष्ट्रीयताओं के अधिकार को मान्यता दी है। तथापि एनयूजी की प्रमुख मांग एनएलडी की सत्ता बहाली है।

युवा मजदूरों, छात्रों और युवाओं ने बड़ी संख्या में प्रदर्शनों में भाग लिया है। सेना द्वारा घोर दमन के बावजूद उन्होंने विरोध का झंडा ऊंचा रखा है। कपड़ा उद्योग के श्रमिकों, विभिन्न मंत्रालयों के कर्मचारियों, शिक्षकों और नागरिक संगठनों के कार्यकर्ताओं ने भी हिस्सेदारी की है। जनता संविधान में बुनियादी बदलाव की मांग कर रहे हैं जिसमें सेना की भूमिका का अंत और संघीय व्यवस्था की स्थापना शामिल है। बाद की मांग विशेष रूप से अल्पसंख्यक राष्ट्रीय समूहों के लिए महत्वपूर्ण है, जो दशकों से स्वायत्तता के लिए लड़ते रहे हैं। इन समूहों ने सैन्य तख्तापलट की निंदा की है। अल्पसंख्यक समूहों के कुछ सशस्त्र संगठनों ने तख्तापलट के विरोध की घोषणा की है। म्यांमार सेना ने एक सैन्य अड्डे पर कब्जा करने के बाद करेन नेशनल यूनियन (केएनयू) के खिलाफ हवाई हमले किए हैं। काया राज्य में प्रदर्शनकारियों के खिलाफ तोपों का भी इस्तेमाल किया गया है और गांवों को जलाया गया है। इन हमलों के बावजूद लोग रक्षा समूह बनाने लगे हैं और प्रतिरोध त्रीव से त्रीवतर होता जा रहा है।

विरोध प्रदर्शनों में बड़े पैमाने पर लामबंदी और लोक रक्षा बलों के बढ़ते गठन और अल्पसंख्यक राष्ट्रीय समूहों की सशस्त्र संरचनाओं के साथ उनकी एकजुटता सेना द्वारा हमलों और दमन के खिलाफ म्यांमार के लोगों के संघर्ष में एक नए चरण की शुरुआत करता दिखाई देता है। सैन्य तख्तापलट के विरोध में इस बार कई नई विशेषताएं हैं जो क्रांतिकारी ताकतों के आगे बढ़ने की संभावना को दर्शाती हैं। हालांकि सुधारवादी परिणाम अभी भी बहुत संभव हैं। सान सू ची से जुड़ी ताकतें विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों में विरोध प्रदर्शन में शामिल हैं। युवा कार्यकर्ता और छात्रों के बीच जुझारु ताकतें भी मजबूत हो रही हैं जो अधिक व्यापक परिवर्तन के लिए लड़ने की ओर बढ़ रहे हैं।

म्यांमार बड़े उथल–पुथल के दौर से गुजर रहा है जो समाज के परिवर्तन की दिशा में आगे बढ़ने की संभावनाओं को अपने में संजोये है।

श्रद्धांजली

संघर्षरत लोगों के वकील वी.के. ओहरी

वीरेन्द्र कुमार ओहरी की मृत्यु में मजदूरों और उत्पीड़ित लोगों ने अपने लिए लड़ने वाला बहुमूल्य मित्र खो दिया है।

आपराधिक कानून पर उत्कृष्ट पकड़ और प्रस्तुत तथ्यों के चक्रव्यूह में आवश्यक बिन्दुओं को पकड़ने की क्षमता वाले वकील, वी.के. ओहरी ने अपनी क्षमताओं का उपयोग श्रमिकों व उत्पीड़ितों को झूठे मुकदमों से, जिन्हें वे अपने संघर्षों के दौरान नियमित रूप से झेलते हैं, रक्षा करने के लिए किया। शोषण और दमन को चुनौती देने वालों के लिए वे एक भरोसेमंद मित्र थे। वह अपनी पूरी क्षमता से उनका बचाव करते थे। वह कार्यकर्ता वकील थे जिनकी सक्रियता आपराधिक कानून के प्रहारों को कम करने में निहित थी, जिनका सामना संघर्षरत लोग रोजाना करते हैं।

वे संघर्षरत लोगों के लिए लड़ते थे, वह भी विश्वास के साथ। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण बात यह थी कि वह उनमें न्यायसंगत कारणों के लिए और अधिक लड़ने का विश्वास पैदा कर देते थे। वे जिन लोगों के लिए खड़े होते थे, वह उनका विश्वास जरूर जीत लेते थे। मजदूरों को हमेशा ही ऐसे वकील द्वारा बचाव किए जाने में खुशी होती है जो बिना किसी हिचक के उनके पक्ष का समर्थन करेगा और स्पष्ट रूप से उनकी बात रख देगा। अदालत की तारीख के बाद अक्सर मजदूर अधिक साहस और ऊर्जा से भरे बाहर निकलते थे। वह उनसे कहते थे कि आप संघर्ष करो, मैं आपकी रक्षा करने के लिए मौजूद हूँ।

चार दशक से अधिक के कानूनी प्रैक्टिस में उन्होंने कभी किसी मजदूर से फीस नहीं मांगी, वे जो कुछ भी देते थे उसे रख लेते थे। और ऐसा तब नहीं था जब उन्होंने खुद को दिल्ली में एक प्रतिष्ठित वकील के रूप में स्थापित कर लिया था, बल्कि तब भी जब वह पेशे में अपने पैर जमाने के लिए संघर्ष कर रहे थे। उनके आते ही इंतजार कर रहे मजदूरों के चेहरे खिल जाते थे।

उनमें उत्पीड़ितों के न्याय की भावना थी। वह उनके कारण के निहित औचित्य को जानते हुए उनके साथ खड़े रहते थे, उस पर कोई आदर्शवादी बकवास नहीं करते थे। उन्होंने शोषण और उत्पीड़न से मुक्त एक विश्व दृष्टिकोण को अपनाया था और न्याय के लिए संघर्ष के सभी आयामों में कानूनी बचाव के माध्यम से योगदान देने का कार्य अपने ऊपर लिया।

एक वकील के रूप में प्रतिभाशाली, ओहरी ने मुख्य रूप से निचली अदालतों में विशेष रूप से जिला अदालत में, अपने काम को केंद्रित रखा। उनका कहना था कि केस को बचाने या बिगाड़ने का 90 फीसदी हिस्सा निचली अदालत में हो जाता है, इसलिए कानूनी न्याय दिलाने के लिए वहां पर पैरवी जरूरी थी। कुछ सीमित केस ही उच्च न्यायपालिका तक पहुंच पाते हैं जो याचिकाकर्ता के संसाधन से तय होता है व जहां चुनौती का दायरा सीमित है। अनियमित और धूल भरी निचली अदालतें ही देश में न्याय की गुणवत्ता तय करती हैं, चमकदार उच्च न्यायालय नहीं, जैसा कि अभिजात वर्ग चित्रित करता है। राहत अक्सर उन लोगों को नहीं मिलती, जिन्हें जरूरत होती है बल्कि उन्हें मिलती है, जो अपनी जरूरत को महसूस करा पाते हैं। ओहरी ने अपने काम को वहां केंद्रित किया जहां यह उन लोगों के लिए सबसे ज्यादा मायने रखता था, जिन्हें उन्होंने बचाव के लिए चुना था, न कि वहां जो उनके लिए ज्यादा लाभकारी होता।

वीके उस समय कानूनी रूप से लड़ने के हिमायती थे जब असली लड़ाई चल रही होती थी; केवल तब नहीं जब लड़ाई समाप्त हो जाए और अधिकार और गलत का निर्णय घटना के बाद किया जाना होता था। वह मूल रुप से संघर्ष के व्यक्ति थे। इसी में उनके सर्वश्रेष्ठ पहलू सामने आते थे। उनका आत्मविश्वास और निडरता संक्रामक थे।

वी.के. न केवल श्रमिकों के लिए कानूनी लडाइयां लड़े, जहां से उन्होंने शुरु किया था, बल्कि सभी उत्पीड़ितों के लिए भी खड़े रहे। वह उन सभी के लिए खड़े हुए जो अन्याय के शिकार हुए व जिन्होंने लोगों और समाज के लिए कष्ट सहे।

उन्होंने औद्योगिक क्षेत्रों और सरकारी क्षेत्र के श्रमिकों का बड़ी संख्या में आपराधिक मामलों में बचाव किया। जब भी वे समाज के पीड़ित लोगों की रक्षा करते थे उनमें और निखार आता था। उनका सबसे अच्छा प्रदर्शन उन्हीं मामलों में होता था जो मामले दूसरे लेने से मना कर देते थे। एस्मा, टाडा, पोटा तथा यू. ए.पी.ए. जैसे दमनकारी कानूनों के तहत बहुत से केसों को उन्होंने लड़ा।

वी.के. ओहरी ने मजदूरों के साथ–साथ छात्रों का भी कानूनी बचाव किया, जिनमें संघर्ष करने वाले डॉक्टर, नर्सिंग छात्र और युवा थे। उन्होंने उत्पीड़ित महिलाओं का बचाव किया, पुलिस हिरासत में बलात्कार की शिकार एक मजदूर वर्ग की बेटी के लिए लड़े व बलात्कारी पुलिसकर्मियों को सजा दिलाई और सर्वोच्च न्यायालय की एक कर्मचारी का भी केस लड़ा, जो तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश के हाथों पीड़ित थी और इस तरह के कई और मामले भी थे।

उनके अंदर का वकील एक्टिविस्ट, जम्मू–कश्मीर में क्रूर दमन के शिकार लोगों का बचाव करने में अपनी पूर्ण क्षमता के साथ प्रस्तुत था। वह उनकी रक्षा के लिए अक्सर कश्मीर जाते थे। उन्होंने पत्रकार इफ्तिखार गिलानी का सफलतापूर्वक बचाव किया जब उन पर एक निराधार मामला थोपा गया।

1984 में दिल्ली में सिख विरोधी हिंसा के दौरान उनके अथक प्रयास न केवल कानूनी बचाव से संबंधित थे बल्कि हिंसा के शिकार लोगों के लिए साथ वे लगातार खड़े रहे।

वीके ने एक निराला जीवन जिया। उन्होंने लीवर की बीमारी से पीड़ित होकर 25 अक्तूबर को अंतिम सांस ली।

उन सभी लोगों को वी.के. ओहरी की कमी खलेगी जो जानते थे कि जब भी कानूनी बचाव की जरूरत पड़ी तो वह वहां मौजूद थे। शोषित और उत्पीड़ितों की रक्षा में उनके काम की दिशा को अपनाना और उसके लिए युवा वकीलों को प्रेरित करना कि वे अपने कानूनी पेशे में उनके आदर्श को अपनाएं, उन्हें याद करने का सबसे बेहतरीन तरीका है। जो लोग वी.के. तथा उन जैसे जनपक्षीय वकीलों की विरासत को आगे बढ़ाएंगे वे निश्चित तौर पर इसी तरह से श्रमिकों और उत्पीड़ितों के संघर्ष की रक्षा करने की ताकत बनेंगे।

लखीमपुर में किसानों की हत्याएं

(पृष्ठ 3 का शेष)

अन्य 3 में चालक हरिओम मिश्रा और दो जाने–माने भाजपा नेता शुभम मिश्रा और श्याम सुंदर निषाद थे। इनकी मौत का कारण जांच का विषय है। लेकिन भाजपा ने प्रचार किया कि प्रदर्शनकारी किसानों ने रमन की हत्या कर दी। महत्वपूर्ण है कि उनका परिवार दृढ़ता के साथ और स्पष्ट रूप से कहता रहा है कि उनके शरीर पर कुचले जाने के टायर के निशान थे। रमन की 13वें दिन की स्मृति सभा में भी आंदोलन की नेताओं ने भाग लिया, भाजपा के लोगों ने नही।

भाजपा और आरएसएस स्थानीय लोगों को सिखों के खिलाफ सांप्रदायिक रूप से ध्रुवीकरण और लामबंद करने में सफल नही रही हैं। लेकिन एसकेएम द्वारा आयोजित विरोध प्रदर्शनों के अलावा, इलाके में सन्नाटा पसरा हुआ है। भाजपा ने आशीष मिश्रा की गिरफ्तारी के खिलाफ लोगों को लामबंद करने की कोशिश की, लेकिन एक छोटी ब्राह्मण सभा ही कर सकी। इसकी अपनी सांप्रदायिक योजना के समर्थन में कुछ ही लोग शामिल रहे हैं। दूसरी ओर 12 अक्तूबर को एसकेएम के विरोध प्रदर्शन में भी सिखों की भागीदारी मुख्य रही। सिखों तक सीमित होने के डर से वहां पर पक्का धरना चलाने की योजना को एसकेएम ने स्थगित कर दिया।

आंदोलन के समक्ष चुनौतियाँ और कार्य

क) यह नई स्थिति किसानों के सभी तबकों को एकजुट करने के लिए एक नए और ऊर्जावान प्रयास की मांग करती है। इसके लिए संगठनों को बुनियादी मुद्दों को समझाने और लखीमपुर और पड़ोसी जिलों के किसानों को खुले जन विरोध में लामबंद करने के लिए कड़ी मेहनत करने की जरूरत है। दमन के सवाल पर किसानों और अन्य वर्गों को लामबंद करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आरएसएस और बीजेपी द्वारा किये गए इस हमले की इस साजिश की जांच होनी चाहिए और इसका पूरी तरह से पर्दाफाश होना चाहिए। इस क्षेत्र में किसान संगठन अपेक्षाकृत कमजोर हैं और विपक्षी दलों ने खुले विरोध में लोगों को लामबंद करने के बजाय केवल प्रेस में आलोचना तक अपने को सीमित रखा है। यह हमारे सामने एक चुनौती है।

ख) दूसरे लोगों को अगले साल होने वाले चुनावों से उम्मीद है कि चुनाव में भाजपा को दरवाजा दिखा दिया जाएगा। चुनाव पार्टियों और उम्मीदवारों के बीच होता है और होगा। इसमें केवल उपलब्ध विकल्पों के बीच जीत–हार होगी। परिणाम अक्सर विपक्षी वोटों के विभाजन, विशेष उम्मीदवारों की जीत को रोकने के लिए अभियान, विपक्षी वोटों को काटने के लिए उम्मीदवारों को खड़ा करने की रणनीति, जाति आधारित और सांप्रदायिक गोलबंदी, वोट डालने के दौरान राज्य मशीनरी के हेरफेर और धन ताकत आदि कई अन्य कारकों से प्रभावित होते हैं। भाजपा को हराने पर बहस नहीं है, यह होना ही चाहिए। हमारे सामने सवाल यह है कि क्या हम इन कृषि कानूनों को निरस्त करने, इस दमन को के खिलाफ एक सशक्त आंदोलन खड़ा कर सकेंगे? जैसा कि हम देख रहे हैं, किसी भी विपक्षी दल ने इन मुद्दों पर जनता को लामबंद नहीं किया है, क्योंकि वे केवल भाजपा की विफलताओं पर सत्ता में आना चाहते हैं। वे केवल लोगों के गुस्से का चुनावी इस्तेमाल करने के लिए प्रयासरत हैं। यह बड़ी चुनौती है, इस मुद्दे पर किसानों को लामबंद करना, एक आंदोलन खड़ा करना और सभी दलों को स्पष्ट रुख अपनाने के लिए मजबूर करना, हमारी जरूरत है।

ग) इस स्थिति ने पूर्वी और मध्य यूपी में भी किसानों को इन मुद्दों और उनके अन्य मुद्दों पर लामबंद करने के काम को अत्यावश्यक बना दिया है। यह कारपोरेट और भाजपा के हमले को पीछे धकेलने में एक बड़ा योगदान करेगा और यह इन क्षेत्रों में जाति और सांप्रदायिक आधार पर लोगों के वोट बटोरने में भाजपा की उम्मीदों पर पानी फेर देगा। आंदोलन के विस्तार से लखीमपुर में हुए इस हमले में निडर होकर उचित सबूत पेश करने में विश्वास पैदा करने में भी वहां के लोगों को ताकत मिलेगी।

घ) अंत में, कानूनी मुद्दे से संबंधित कार्य हैं। अपराधिक केस की कानूनी कार्यवाही में भाग लिया जाना चाहिए और साक्ष्य प्रस्तुत किये जाने चाहिए। गवाहों को उचित विश्वास दिया जाना चाहिए। पीड़ितों के परिवारों और अन्य गवाहों के बीच समन्वय स्थापित करने के प्रयास की आवश्यकता है। एकीकृत दृष्टिकोण के लिए एक कानूनी टीम गठित करने की जरूरत है और भाजपा कार्यकर्ताओं की पीट–पीट कर हत्या करने के आरोप में किसानों के बचाव के काम में समन्वय करने की जरूरत है।

If Undelivered, Please Return to

Pratirodh Ka Swar

Monthly

Balmukand Khand,
Girinagar,
New Delhi-110019

Hindi Organ of CPI(ML)-New Democracy

R. N. 47287/87

Book Post

To

;;;